जीवन सरिता

सुमित्रा चरतराम

शरद जोशी

जन्म 21 मई 1931, उज्जैन (म० प्र०)

सुमित्रा चरतराम



प्रकाशक	शब्दकार 2203 गली डकौतान तुर्कमान गेट दिल्ली 110006
मूल्य	सोलह रुपये
प्रथम संस्करण	1982
मुद्रक	भारती प्रिंटर्स दिल्ली 110032
आवरण	चतनराम
आवरण मुद्रक	परमहंस प्रेस नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया नई दिल्ली 110028
पुस्तक बंध	दुगल्ला बुक बाइंडिंग हाउस दिल्ली 110006

कथा कहना सहज होता तो मैंने वरसो पूर्व ही कचन के जीवन म उतार-चढावो को, उसकी चितन बाधाओ को, उसके आदर्शों और मूल्यो को, यहा तक कि किसी क्षण विशेष के व्यामोह की धरती पर हुए उसके स्खलन को भी कथा के साचे म ढाल दिया होता। बार बार सकल्प किया है कि कचन की कहानी अब कह डालू, किंतु कभी व्यस्तता के बोध से अपने मनोयोग के भावो को ढँकने का प्रयत्न किया तो कभी किसी और कारण को जानबूझ कर आड बना लिया। इसलिए कचन की कहानी अब तक अनछुई रह गयी थी।

एक कारण और भी विशेष रहा होगा। मेरा विचार है कि मैं अब तक उन परिस्थितियो के चरम की प्रतीक्षा कर रही थी जिसके आविर्भाव के बाद से कथा का सृजन सभव होता है। आज ऐसा ही लग रहा है कि वह चरम क्षण उपस्थित हो गया है जहा घटनाओ का बिखराव सगठित होकर जीवन के किसी मार्मिक सत्य का उदघाटन करता है। इसीलिए आज मन के सपूर्ण योग मे जुट गयी हूँ। विकल्प की प्रत्येक सभावना अब तिरोहित हो गयी है।

वस्तुत कचन कोई वास्तविक नाम नही। नाम तो यू भी महत्वपूर्ण नही होता। महत्वपूर्ण तो हैं वे स्थितिया, जिनके सरक्षण या कुरक्षण मे कोई सज्ञा व्यक्तित्व के विविध साचो मे ढलती है। महत्वपूर्ण हैं वे आघात, जो व्यक्ति को टूट जाने के लिए विवश कर देते हैं और फिर महत्वपूर्ण है जिजीविषा, जिसके अक्षुण्ण बने रहने पर प्रत्येक द्वद्व को झेलते हुए उन पर विजय पायी जा सकती है। जिजीविषा, जो आस्थाओ को यथार्थता प्रदान करती है और तिल तिलकर टूटते हुए व्यक्ति की अलौकिक गरिमा से युक्त कर अपनी विजय की घोषणा कराती है और सुप्त चेतना पर कोमल

आघात के द्वारा हृदतंत्रि को झंकृत कर नये सुरो का संधान कराती है।

उपर्युक्त ऐसी ही तमाम स्थितियो का ऐसी ही भिन्न द्वंद्वाघातो का और ऐसी ही आस्थावती प्रबल जिजीविषा का एक नाम कचन भी क्या नही हो सकता ? उसी कचन की कहानी का लाभ मुझे एक अरसे से है। सच है कि समृद्ध लेखक की किसी प्रखर कल्पनाशक्ति का मुझमे अभाव है, और शैलीगत बारीकियो से भी अनभिज्ञ हूँ। फिर भी कचन की करुण कथा लिखने के विचार को आज कायरूप मे परिणत करने का प्रयास कर रही हूँ। उपरोक्त दुर्बलताओ के कारण सपूर्ण घटनाक्रम का पर्यवेक्षण जैसा स्वय किया अथवा कचन के मुख से सुना, उसे ज्यो का-त्यो प्रस्तुत कर देना ही मेरी विवशता समझी जानी चाहिए। सभव है कि मेरी दुर्बलता प्रकारातर मे सबलता ही प्रमाणित हो, क्योकि इसी प्रकार मेरे अतर पर अकित कचन का व्यक्तित्व अपेक्षाकृत अधिक सपूर्णता लिए हुए सप्रेषित हो पायगा।

कचन मेरे मन का सबसे कोमल तार है। हो सकता है उसके टूट जाने के भय से ही आज तक उसे झंकृत नही कर पायी और मन की विकल्पात्मक एव स्थितियो को ही दोषी ठहराती रही। मन-वीणा के असख्य तारो मे विभिन्न रसो का सधान करते हुए न जाने कितने गीत मुखरित हो चुके है। बस यही कचन वाला तार भीतर ही भीतर घुमडता रहा, अभिव्यक्ति के लिए तडपता रहा। जैसे निरभ्र नील आकाश मेघाच्छादित होता रहे और फिर क्रमश पूर्णरूपेण स्याह होकर भीतर ही भीतर विद्युतलताओ की तडपन सहते हुए भी बरस न पाए। कदाचित मेरे सदर्भ मे भी वैसा हुआ है। आकाश यदि बरसेगा नही तो फट पडेगा। इसीलिए कचन की कथा कह बिना अब रहा नहा जा रहा। पिछले काफी समय से स्थितियाँ भी कुछ एम ही रूप मे परिवर्तित होती रही जिससे मन मे एक और कुन भी उभरने लगा—यही कि अततोगत्वा कचन वाले कथानक का अन्त क्या होगा।

लेखक द्वारा घटनाओ पर चरमोत्कर्ष का कृत्रिम रूप आरोपित कर देना निश्चित ही कोई अच्छी स्थिति नही होती। कम से कम कचन की कथा के सदर्भ मे तो ऐसा ही मानना पडेगा। यह अलग प्रश्न है कि क्या

चरमोत्कर्ष नाम की कोई स्थिति सम्भव भी है ? जीवन के निरंतर क्रम क्षण-विशेष मे जिस किसी घटना का बीजारोपण होता है वो घटनाक्रम का एक लम्बा सिलसिला जोडता हुआ आंतरिक और बाह्य द्वंद्वो की अनेक मंजिलें तय करके क्षय को प्राप्त होता है। एक बार फिर से नयी मंजिलें पार करने के लिए यही कंचन के जीवन मे हुआ है, और उस दिन मुझे लगा कि हां, अब कहानी सम्पूर्ण हो गयी। हो सकता है कि उस दिन से पूर्व तक यही अपूर्णता-बोध मुझे लेखन मे प्रवृत्त नही कर पाया। कंचन मेरी बाल सखी है। सच तो यह है कि वही मेरी एकमात्र मित्र है। न जाने क्यू और किसी से भी मेरी कभी घनिष्ठता नही हो पायी। मैं तो यह भी नहीं बता सकती कि कब से उसे जानती हूँ। जब से तनिक होश संभाला तभी से देखती आ रही हूँ कि हम दोनो सदा अभिन्न रहे है। मेरे और उसके पिता—दोनो के घर परस्पर सटे हुए थे। दोनो का अपना अलग अलग व्यवसाय था। बहुत धनाढय उन्हे नही कहा जा सकता, पर किसी वस्तु का अभाव भी उन्हे नही रहा। दोनो परिवार एक से ही लगते थे। प्रतिदिन का उठना बैठना रहता। हम दोनो बचपन मे साथ साथ खेलकूद मे मस्त रहती। कंचन के पिता आयु मे मेरे पिता से कुछ छोटे थे। इस कारण मैं उन्हे चाचा और कंचन की माता को चाची कहकर सम्बोधित करती थी। मेरे माता-पिता को कंचन बाबूजी और अम्माजी कहकर संबोधित करती थी। हम दोनो समवयस्क होने के कारण सब जगह प्राय साथ साथ जाती और दोनो एक ही स्कूल और एक ही कक्षा की छात्राएँ थी। और इसी कारण एक ही गाडी मे पढने जाया करती थी।

मुझे भली भाँति याद है, खेल मे चाहे कितने बच्चे एकत्रित हो, कंचन सभी को आकर्षित कर लेती थी। उसमे क्या जादू था यह तो भगवान ही जाने। ऐसी अवस्था मे बच्चो को ईर्ष्या होना स्वाभाविक ही है पर कंचन से मुझे कभी ईर्ष्या नही हुई।

समय बीतता गया। हम दोनो ने यौवन की प्रथम देहरी पर कदम रखा। इस आयु मे प्रत्येक युवक-युवती के मन मे कल्पनाओ के ज्वार उठने लगते है। मै भी कल्पना के संसार मे प्राय विचरती ही रहती। मैं देखने सुनने मे सुंदर ही समझी जाती थी, पर कंचन से मेरी कोई तुलना नही

सकती थी। उसे देखकर यही लगता कि भरपूर अवकाश के समय विधाता ने उसे अपने हाथों पूरी तन्मयता से रचा है। शारीरिक सौंदर्य की बात तो है ही, पर वह मन की भी अपूर्व सुंदरी थी। गुणों की खान। बात करती तो माना फूल झरते, चलती तो लगता जैसे कोई साक्षात् देवी चली आ रही हो। पढ़ाई में सवप्रथम। पाठ्येतर गतिविधियाँ—नृत्य, संगीत, वाद-विवाद, अभिनय आदि सभी में सर्वश्रेष्ठ। विद्यालय में जब भी किसी नाटक का मंचन किया जाता तो वह प्रत्येक प्रकार की गंभीर भूमिका बड़ी सुंदरता से निभाती। चाची बेचारी का सदैव यही आशंका रहती कि उनकी बेटी को कहीं किसी की नजर न लग जाय।

मैंने चाची से एक बार हँसते हुए कहा, "सवेर-शाम एक बार कंचन की नजर उतार दिया करो चाची! फिर चिंता नहीं करनी पड़ेगी।"

कंचन की प्रशंसा करते समय लोग प्रायः समय के अभाव की बात भूल जाया करते, लेकिन कंचन का इन सब बातों से जैसे कुछ भी लेना-देना नहीं था। उसके व्यवहार में घमंड की लेशमात्र भी झलक कभी दिखायी नहीं दी। एक दिन मैं स्कूल से लौटकर कंचन के घर ही ठहर गयी। बातों-बातों में हँसते हुए कहा, "कंचन, तुझे अपने रूप गुण पर अभिमान क्यों नहीं होता, क्या तुझे उसका आभास नहीं है?"

कुछ क्षण वह सोचती रही, फिर कहा, "सुन माधवी, अभिमान किस बात का करूँ और क्यूँ करूँ? शारीरिक सुंदरता भी क्या कोई रहनेवाली है? मुझे अपनी सुंदरता का आभास हो भी तो उससे मेरे जीवन पर क्या कोई प्रभाव पड़ेगा, यह मैं नहीं जान पाई। जानने का न कभी प्रयत्न किया और न करना चाहूँगी। पर माधवी, तू मुझे बता कि तू किस सोच-विचार में पड़ी रहती है? तू क्या मुझसे कम सुंदर है? तू मेरी इतनी प्यारी सखी है, तू क्या नहीं अपने और मेरे होने के बारे में सोच सकती?"

उसकी बात का मैं कोई उत्तर न दे पायी। मन में सोचा कि कंचन से मेरी कोई तुलना हो ही नहीं सकती। विषयांतर करते हुए फिर पूछा, "कंचन, हँसने की बात नहीं है। तूने कभी अपने भविष्य के बारे में सोचा है? कल्पना में अपने पति की कोई रूपरेखा कभी बनायी है या नहीं?" वह मुसकराई और कहने लगी, "मैंने अभी तो तुमसे कहा कि मैंने कुछ नहीं

सोचा और एक बार फिर कहती हूँ कि तू ही अपने और मेरे दोनों के ही पति की रूप-रेखा बना ले।'

यह कह वह खिलखिला कर हँस पड़ी। कृत्रिम क्रोध प्रकट करते हुए मैंने कहा, 'मैं अब तुझसे बात नहीं करूँगी। मैं तो अपनी हर बात तुझे बताती हूँ, पर तू अपने मन का रहस्य मुझ पर कभी नहीं खोलती। मेरी हरेक बात हँसी में उड़ा देती है।

कंचन ने बड़े प्यार से मेरे गले में बाँह डालकर मुझे झिंझोड़ा और बोली, 'मुझसे बोलना छोड़ के देख तो जरा, देखूँ किस में अधिक शक्ति है तुझ में या मुझ में?"

उठते हुए मैंने कहा, "न बाबा, तुझ से हार मान गयी। सदा ही तू मुझे हराती रही है तो आज भी कैसे जीत सकती हूँ?'

इसी प्रकार हमारे सुख के दिन बीतते जाते। यह भी नहीं पता चलता कि कब सवेरा हुआ और कब साँझ घिर आयी।

कंचन की माँ बड़ी विदुषी स्त्री थी। नये युग परिवेश में रहते हुए भी परंपरा को कभी नहीं छोड़ पायी। प्रातःकाल स्नान-पूजा करना, समय निकाल कंचन को कोई-न-कोई पौराणिक धार्मिक प्रसंग विस्तारपूर्वक समझाना, उनकी दिनचर्या का एक आवश्यक अंग था। कंचन के साथ कभी-कभी मैं भी चाची की बातें सुनने बैठ जाती। मुझे बड़ा आनन्द आता। उनके द्वारा कहे हुए अधिकांश प्रसंग प्रायः स्त्री जाति से संबंधित होते। नारी के धर्म की व्याख्या करते-करते वे स्वयं विभोर हो उठती थीं। नवरात्रि के अवसर पर एक बार चाची नवदुर्गा के रूप का वास्तविक अर्थ हमें समझाने लगी। उनके विचार के अनुसार दुर्गा के नौ रूप स्त्री के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। उसको परिवार के निर्वाह के लिए स्थिति के अनुसार भाँति-भाँति के भावों का संचार करना पड़ता है। वह बेटी से वधू और फिर पत्नी और फिर माँ बनती है। इन सबके निर्वाह के लिए उसे कितने ही रूप धारने पड़ते हैं। इस कारण आरंभ से ही अपने जीवन में शक्ति का संचार करने की प्रत्येक युवती को आवश्यकता है जिससे उसका भविष्य आनन्दमय हो सके। परिवार को चलाने के लिए उसे न जाने कितने तूफानों से गुजरना पड़ता है। उसको जन्म भर तपना पड़ता है। इन्हीं सब कारणों से

को शारीरिक बल का अभाव होते हुए भी शक्ति के नाम से सुशोभित किया गया है।

एक दीर्घ अंतराल के बाद अचानक कंचन का पत्र आ पहुँचा। मैंने कई बार पत्र द्वारा उसकी खोज खबर लेने का यत्न किया। लेकिन कभी उसका उत्तर ही नहीं आया। मैं भी अपने गृहस्थ जीवन में व्यस्त होने के कारण उसकी इतनी खोज नहीं कर पायी, जितनी कि मुझे करनी चाहिए थी। कंचन ने पत्र में लिखा कि वह कमल के साथ दिल्ली आ रही है और कुछ दिन मेरे ही साथ व्यतीत करेगी। पत्र को पढ़कर एक ओर जहाँ ढेर-के ढेर प्रश्न अनायास ही मस्तिष्क में उभर आये वहीं दूसरी ओर एक पुलक का भी अनुभव हुआ। पत्र की भाषा स्पष्ट रूप से यही घोषणा कर रही थी कि कमल फिर उसके जीवन में लौट आया है। मुझे लगा कि चलो, अब कंचन के भटकावों का अंत हुआ अब वह फिर से एक नया जीवन बिता सकेगी। वरना विवाह के कुछ ही दिन बाद से जाने कितने समय तक उसने कितने ही भयंकर मानसिक आघात झेले होंगे। और मुझे लगा कि अब टूटते टूटते वह एक बार फिर जुड़ने लगी है। मैं इन्हीं सब कल्पनाओं में क्षण भर के लिए डूब गयी किंतु होश संभालते ही मन के किसी कोने में जाने क्यों यह महत्वाकांक्षा बलवती होने लगी कि लेखिका के रूप में स्वयं को स्थापित करूँ।

कभी-कभी पहले भी ऐसे ही विचार मेरे मन में आते रहे हैं और कंचन ने एक बार परिहास में मुझ से कहा था कि 'तू एक दिन अवश्य लेखिका बनेगी और तेरी प्रथम पुस्तक मेरे जीवन पर ही आधारित होगी समझी ?' वह परिहास अब सत्य बन कर सामने प्रस्तुत है। अपने परिवेश से बाहर जा पाना मेरे लिए संभव भी तो नहीं हो सकता।

कंचन के पत्र के उत्तर में मैंने एक तार भेज दिया और निश्चित दिन पर उसे लेने भी पहुँच गयी। पता चला कि ट्रेन लगभग दो घंटे लेट है। यह जानकर मन बहुत परेशान हो उठा। एक बार तो यह भी इच्छा हुई कि घर लौट चलूँ पर इतनी दूर लौट कर दोबारा आना बड़ा कठिन लग रहा था। मन मसोस कर एक यात्री बेंच पर बैठ गयी और स्टेशन की चहल पहल में डूब जाने का प्रयत्न करने लगी।

रेलवे स्टेशन का भी अपना विचित्र संसार होता है। हड़बड़ी, गहमा-गहमी, कोलाहल और जीवन की मशीनी पद्धति की भागमभाग के अतिरिक्त जीवन का कोमलतम स्पंदन भी यहां स्पष्ट सुनायी दे सकता है। कांपती हथेलियों में जकड़े रूमालों का शून्य में लड़खड़ाना और फिर स्थिर हो रहना जाने कितनी कहानियों का वातावरण में छोड़ जाता है। भावना के किसी भी कोमलतम रूप में धड़कते दिलों की बेचैन प्रतीक्षा के पल जब समाप्त होते हैं तो विभिन्न स्तरों पर अनेक पुलकों की अभिव्यक्ति के विविध रूप व्यथित मन को जाने कितने लोकों का भ्रमण कराने लगते हैं। देशी और विदेशी संस्कृतियों, सभ्यताओं के विविध रूपों और भाषाओं की अनेकरूपता के इस संगम पर व्यक्ति की सार्वभौमिकता स्वतः प्रमाणित होने लगती है। यह स्वाभाविक है। मन पर पड़े कृत्रिम आवरण ज्यों ज्यों खिंचते चले जाते हैं त्यों त्यों उनमें छिपे मन का पारदर्शी स्वरूप झिलमिलाने लगता है जिसमें कहीं कोई कुंठा नहीं, सलवट नहीं। नितांत सहज उन्मुक्त प्राकृत—जैसे कोई नन्हा सा मृगछौना अपनी उमंग में चौकड़ियां भरता हो।

जाने कहां से कहां जा पहुँची हूँ लेकिन यह बहकना नहीं है। बात से बात निकलती है तो कहे बिना रहा नहीं जाता। मेरी यह पुरानी आदत है। कंचन ने प्रायः मेरी इसी आदत का खूब मजाक उड़ाया था। कंचन ही क्या, अवसर मिलने पर मेरे पति राजन भी नहीं चूकते। यह सब बातें तो बाद की है। आपबीती कहने के बहुतेरे अवसर मिलेंगे। पर के माध्यम से स्व का संधान भाव अधिक गौरवान्वित करता है। स्व और पर में एक द्वंद्व होता है यह दूसरा प्रश्न है।

तो कंचन की बात ही पहले कहूंगी। उस दिन स्टेशन की खाली बेंच पर बैठे बैठे कंचन की प्रतीक्षा को समर्पित घड़ियों में मैं अतीत को खोजने लगी।

रेलवे प्लेटफार्म की वह बेंच ही उस दिन मेरे लिए नौका बन गयी। उसी पर सवार होकर मैं अतीत के सागर में बहुत दूर तक निकल गयी। समुद्र कभी शांत नजर आता रहा तो कभी उसमें ज्वार भी उठते रहे। वस्तुतः उन्हीं अमूर्त ज्वारों का शब्दमय चित्रण ही तो कंचन की कहानी है। यों, सागर के उस विशाल वक्ष पर झिलमिलाती सूर्य किरणों के सत

अचानक आँख खुल गयी। प्लेटफार्म इस समय लगभग खामोश था, किन्तु मचन की ट्रेन आने में अभी काफी समय था। मैंने फिर पलकें मूंद ली और कल्पना में भाँति भाँति के विचार उभरते रहे और विलीन होने लगे। कई प्रकार की जिज्ञासा का मन में संचार हुआ। जिज्ञासा भी एक प्रकार की क्षुधा ही है, जिसकी अनुभूति विचित्र है। जाने कितने रूपों में, कितने अच्छे और बुरे आयामों को स्वयं में सहेजे, इसकी छटपटाहट में कभी-कभी नहीं आती। रूप रस, गंध, स्पर्श और श्रवण के माध्यम से व्यक्ति जिस आनंद की प्राप्ति के लिए छटपटाता है वह भी तो क्षुधा का एक रूप ही है। किन्हीं विशिष्ट दुर्लक्षणों में, यही क्षुधा व्यष्टि जीवन में जिस अभ्यन्तर ताण्डव का सूत्रपात करती है, उसका प्रत्यक्ष रूप है कचन की कथा। निस्सन्देह कचन ने स्थितियों को अपने ढंग में समझा, विश्लेषित किया। उसकी अपनी आस्थाएँ और मूल्य हैं। उनसे उन मूल्यों और आस्थाओं को तिलांजलि दें, तो क्या उसकी कथा कहना न्यायसंगत होगा? इसलिए उस क्षण विशेष का उल्लेख अनिवार्य हो गया है जो कचन के लिए अवांछित था। उस क्षण का आविर्भाव उसके जीवन में यदि न हुआ होता तो इस कथा का स्वरूप कुछ भिन्न होता। यह भी संभव है कि कथा कहने की अपेक्षा ही न रहती, उसी एक क्षण ने उसके जीवन को जिन घुमावदार पगडंडियों पर दौड़ाया, उनका अंत नहीं। कथाकार की संवेदना लेकर भी क्या कचन की उस मर्मांतक वेदना को, आंतरिक छटपटाहट को रूपायित किया जा सकेगा, जो पूर्णरूपेण उसी एक क्षण का दाय है? जिस 'सुपुरुष' के माध्यम से वह क्षण उसके जीवन में आ पहुँचा, मेरे भीतर के कथाकार ने जब जब उसे दोषी सिद्ध करना चाहा, तब-तब कचन ने तर्जनी के संकेत द्वारा मुझे मौन रह जाने पर विवश कर दिया।

आज भी जब नये सिरे से विश्लेषण करने बैठी हूँ तो मन होता है कि तीव्र आक्रोश के साथ इस व्यक्ति को सामाजिक लांछना का पात्र बनाकर प्रस्तुत करूँ तो कचन का वही पुराना आग्रह मुझे रोक देता है। लगता है उसका यह परामर्श एकदम उपेक्षणीय भी नहीं। कदाचित पुरुषमात्र प्रति विद्रोह भावना का यही रूप कथा के मन में आकार ग्रहण कर है। सीता, यशोधरा आदि पौराणिक ऐतिहासिक आख्यान भी स्त्रा

के साक्षी है कि उन महिमामयी नारियो के जिस व्यवहार का पुण्य आज तक नारी का समर्पण मानता आया है वह वस्तुत विभिन्न युगो म नारी के मौन विद्रोह का ही देश कालानुसार विकसित होता हुआ रूप रहा है।

'राजापुर वालो ने बच्चो को लिवा ले जाने के लिए हवेली से मोटर भिजवायी है।" चाची जब भी बात करती, उनका स्वर हमेशा सप्तम स्वर म होता।

मैं उस समय कचन के घर म बैठी गप्पें लडा रही थी। हम दोनो के घर साथ साथ सटे हुए थे और दोनो के घरो मे विभाजक रेखा के रूप म एक छोटी सी दीवार भर थी। एक-दूसरे के पास आने जाने के लिए कभी चोरी छिपे उसे फादने की आवश्यकता अनुभव नही हुई। दोनो घरो का परस्पर स्नेह भाव कुछ ऐसा ही था। मेरे दिन रात प्राय वही व्यतीत होते या कभी कचन ही मेरे यहा रह जाती। नाता अवश्य कुछ न रहा हो किंतु परस्पर के स्नेह भाव और मैत्री ने दोनो परिवारो को बहुत निकट ला खडा किया था।

चाची का प्रखर स्वर कानो म पडा तो हम दोनो की आशा प्रसन्नता का ज्वार उमड आया। राजापुर वालो के यहा से बच्चो को लिवाने जब कभी कोई आता तो हम दोनो सग जाती। मेरे बिना कचन का जाना गवारा नही और कचन के बिना मैं अकेले रह नही सकती थी। राजापुर जाने के लिए हम दोनो ही लालायित रहा करती। बरसो से ही यही क्रम चला आ रहा था। इसीलिए चाची का स्वर कानो मे पडते ही कचन ने मेरी बाह पर चिकोटी काट ली। एक दबी हुई सिसकारी मेरे मुह से निकली और फिर कल्ले म मैंने कस कर एक धौल उसकी पीठ पर जमाते हुए शिकायत की, "मुझे मारे क्यो डालती है पगली।"

कचन का उत्साह तनिक मद हो आया। पल मे तोला पल म माशा, ऐसा ही उसका स्वभाव था। बीच-बीच म उस पर मानो उदासी के दौरे पडा करते थे। वह बहुत चचल नही थी फिर भी हँसना-खेलना, चहकना हम दोनो का चलता ही रहता। कभी कभी उसकी दार्शनिकता और

उदासी पर झुंझलाहट हुआ करती और फिर प्यार और करुणा की मिली-जुली प्रतिक्रिया होने लगती।

उस दिन भी मैंने धौल तो जमायी, पर बाद में करुणा होने लगी। मना लेने के स्वर में कहा, 'बुरा मान गयी क्या?'

कंचन की उदासी के बादल छँट गये, कहा, "नहीं तो।" तभी चाचा जी की ठहरी हुई आवाज गूंजी, 'अरे भाई, तो चिल्ला क्यों रही हो! मोटर भिजवाई है तो लड़कियों को तैयार होने के लिए कहो। दो चार दिन वहां रह आयेंगी।'

'चिल्लाऊँ नहीं तो, क्या करूँ? आप तो जैसे कुछ समझते ही नहीं। कुछ पता भी है, अब वह बच्चियां नहीं रहीं, सयानी हो गयी हैं।"

चाची की ऐसी बातें सब बड़ी नागवार गुजरती। बात चाहे कितनी भी छोटी हो पर वह उसको बहुत दूर तक सोच डालतीं और तिल का ताड़ बनाये बिना न रहती। तनिक सी आशंका को भी अत्यन्त भयावह रूप में वह अनायास ही देखने लगती, पर उस दिन चाचा जी ने इनकी बात को सहज हँसी में उड़ाते हुए, हमारे दिलों की धुकधुकी को थाम लिया, बोले, "अरे! तो मैंने कब कहा, सयानी नहीं है! खूब सयानी समझदार हैं दोनों।"

चाची को जब कोई उत्तर न सूझा तो अस्पष्ट स्वर में कुछ बड़बड़ाती हुई अपने कमरे में चली गयी। हम दोनों ने चाचा जी की आवाज सुनते ही झटपट जाने की तयारी शुरू कर दी। डर था कि कहीं चाची फिर किसी आदेश की घोषणा न कर दें।

राजापुर वालों से चाचा जी का वास्तविक संबंध क्या है—यह बचपन में हमें बिलकुल मालूम नहीं था। जैसे मैं कंचन के पिताजी को चाचा जी कहती थी—वैसे ही राजपुर वालों को हम दोनों ही चाचा जी पुकारा करतीं। काफी बड़े होने पर ही जान पाये कि वे कंचन के पिताजी के घनिष्ठ मित्र हैं। जमींदारी जब टूटी, तो चाचा जी ने सब समेट कर व्यवसाय में मन रमाया। पर राजापुर वालों ने गांव में ही कृषि फार्म खोला और आधुनिक साधनों से अपने हाथों खेती-बाड़ी प्रारम्भ कर वहीं उनकी गढ़ी नुमा हवेली थी। फार्म के साथ ही आधुनिक

आवासीय भवन और बनवा लिया। मजदूरों के रहने के लिए पक्के घर भी उन्होंने बनवाये। जमींदारी न रही तो क्या हुआ गांव वाले उन्हें अपना जमींदार ही समझते थे। उनके प्रति भक्ति भाव मे, ग्रामीणों में कभी कमी नहीं आयी। वे थे भी इसी योग्य। इसीलिए बाबू त्रिभुवन नारायण का यश सब ओर चांदनी-सा फैला हुआ था। पुराने दिन नहीं रह तो ही क्या, उनका अपना व्यवहार वैसा-का-वैसा रहा।

रेलवे प्लेटफार्म की बेंच पर बैठे-बैठे उस दिन सबसे पहले मुझे वही दिन याद आया, जिसका उल्लेख मैं अभी कुछ क्षण पूर्व कर रही थी।

चाचा जी हमारे कमरे में आते हुए दिखाई दिये। बोले 'कंचन माधवी त्रिभुवन नारायण ने तुम दोनों को लिवा ले जाने के लिए मोटर भेजी है। उनके यहां तो सदा ही कोई न कोई उत्सव होता ही रहता है। सावन का महीना है शायद तीज के मेले का कोई आयोजन किया है। जाओ, घूम फिर आओ। मन बहल जायेगा।'

चाचा की यह बात सुन हम दोनों की भीतरी मुसकान होंठों से झरने लगी। चाचा जी भी हमें आनंद में देख मुसकराते हुए बाहर चले गये। उनके जाते ही हमारे पराक्रम पंख उग आये। दौड़ती हुई मैं घर पहुंची और मां को सूचित भर कर दिया।

जानती थी कि चाचा जी की आज्ञा है और कंचन साथ जा रही है इस कारण मां को कोई आपत्ति नहीं होगी।

शीघ्र ही तैयार होकर हम राजापुर वालों की मोटर में जा बैठे। सुरक्षा और सुविधा के विचार से चाचा जी ने बहुत पुराने दरबान गणेश बहादुर को भी हमारे साथ कर दिया हालांकि इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी।

बनारस की उस नयी आबादी से बीस पच्चीस कोस दूर जाने पर ही राजापुर पहुंच सकते थे। शहर की चहल पहल से बाहर निकल, प्रकृति के उन्मुक्त विस्तार में जैसे ही संबंध जुड़ता वैसे ही मन पर उन्माद सा कुछ छाने लगता। राजापुर के प्राकृतिक सौंदर्य का तो कहना ही क्या था! वही तो एक आकर्षण था जो हम बार-बार वहां जाने के किसी भी अवसर से चूकने नहीं देता था। मेरे विचार में इसके अतिरिक्त आकर्षण

का एक और भी कारण रहा होगा—यही कि शहर में रहते हुए मन की संपूर्ण उन्मुक्तता के साथ हम विचर नहीं सकते थे। एक प्रकार से बंधन-मुक्त तो हम वहाँ भी थे, पर फिर भी सीमाएँ थीं। इसलिए हमारी सारी शरारतों का केन्द्र सिर्फ घर ही था। घर की चार-दीवारी हमारी उन्मुक्तता का जैसे दम घोटती थी। घर से स्कूल निकल जाते और छुट्टी होते ही घर लौट आते। जब स्कूल छूटा और कॉलेज जाने लगे, तब तो आत्म संयम का पहरा और भी कठोर हो गया। यह सब हमें किसी ने विशेष रूप से सिखाया नहीं था। अनजाने ही किसी अंतःप्रेरणा से हम स्वतः विवश हो जाते। स्त्री शिक्षा का प्रचार तब अवश्य था और बहुत जोरों पर भी था। नारी-मुक्ति की भी खूब चर्चा हुआ करती। फिर भी नारी के सहज शील-संकोच के अतिरिक्त उसकी अपनी परिवेशगत विवशताएँ तो थीं ही। उनका अतिक्रमण हमारे वश की बात नहीं थी। शिक्षा ने हमारे मन-मस्तिष्क को खोलने का प्रयत्न किया, किन्तु सारे समाज को वह दीक्षा आधुनिक रूप में कहाँ प्राप्त हुई थी? फिर भला हमीं लोक रुचि की उपेक्षा कहाँ तक कर पाती?

ऐसा भी नहीं कि हम स्थान में बेकार दौड़ती फिरती रही हों। फिर भी वहाँ की आबो-हवा में वह घुटन नहीं थी, प्रकृति का सीधा संपर्क वहाँ हर क्षण दिखाई देता था। वह तादात्म्य शहर में कैसे संभव होता? माटी की कच्ची गंध, नाक-भौंह का सहज उल्लास, हरीतिमा के स्वच्छंद विस्तार का मौन निमंत्रण हमें रह-रह कर आकर्षित करता। तिस पर रानीपुर वालों के संरक्षण में मनाये जाने वाले उत्सवों का रंग ढंग भी निराला होता। सरस्वती-पूजन हो लक्ष्मी-पूजन हो या फिर रामलीला अथवा जन्माष्टमी, उनकी पुरानी शान-बान में कहीं कोई कसर न आ पायी। परंपरा और भव्यता का अनोखा सम्मिश्रण।

लगे हाथों अपने और कंचन के विषय में एक और बात की जानकारी करा देना भी आवश्यक है। यह मेरा निजी विश्लेषण है, मतभेद की संभावना हो सकती है। यह सच है कि प्रकृति के प्रति हम दोनों का असीम लगाव है पर दोनों के इस आकर्षण के मूल में एक अत्यंत सूक्ष्म विभाजक रेखा है। प्रकृति मेरे लिए एकमात्र मनोरंजन एवं मन बहलाव का साधन ही

रही है। बच्चा के खिलौने की तरह, खिलौना नहीं मिला या टूट गया तो जरा सा रो भी लिए और बहलाने-फुसलाने पर फिर दूसरे खिलौने म मग्न हो गये। किन्तु कचन के साथ ऐसा नहीं था। प्रकृति उसके लिए जैसे स्वय मा ही समझाने का एक माध्यम रही। कभी कभी सोचती हूँ कि, कचन प्रेम की दीक्षा मुझे कैसे मिल गयी लेखिका या कवियत्री तो होना चाहिए था कचन को।

यदि वह स्वय अपनी कथा लिखती तो सभवत वह अधिक गहराई म उतर पाती। पर उसकी कथा मैं लिखू, यह भी कदाचित् अदृश्य का ही विधान है। जो दायित्व भार मुझ पर आ पडा है, उसका वहन मुझे ही तो करना होगा।

टूटी कडिया को फिर जोड रही हूँ ।

उस दिन त्रिभुवन नारायण चाचा जी की मोटर म बैठकर हम बहुत प्रसन्न थ। गणेश बहादुर, ड्राइवर की बगल म फौजी अफसर-सा तन कर बैठा था। ऐसा लग रहा था, मानो वह कोई मोर्चा सर करने जा रहा हो। मोटर से दिखाई दे रहा था कि आकाश कुछ बादलो से ढँका हुआ था।

कहानी कहते कहते व्यक्ति जीवन के अव्यक्त ताडव का सूत्रपात करने वाले क्षण विशेष का उल्लेख, मैं शायद कर चुकी हूँ। मुझे क्या पता था कि कचन के जीवन के उस क्षण विशेष का आविर्भाव राजापुर में ही त्रिभुवन नारायण चाचा जी के गाँव मे हुआ। वह बात कुछ बरसो बाद ज्ञात हुई। उसके पूव जान पाने का कोई साधन भी नहीं था। कचन के मन की थाह लेना, कोई आसान बात नहीं थी। वह अपने मन की बात किसी से कहने में सदा ही सकोच करती रही। कचन के उस क्षण विशेष का आविर्भाव जिस पुरुष के माध्यम से हुआ, व थे आशुतोष भया।

त्रिभुवन नारायण के बहुत चहेते पुत्र, आयु मे हमसे दो-तीन वष बडे अपने पिता सरीखे स्वस्थ, हँसमुख और रूपवान। उसी वष पढाई समाप्त करके अपने पिता के साथ काम धधे म सहयोग करने लगे थे। राजापुर के प्राकृतिक आचल म एक वह युवक था, जो हमारे आनद को पूर्णता प्रदान करता।

हमारा उसका रूठावल मनौवल, छीना झपटी का रिश्ता बचपन मे ही चलता आ रहा था। अधिकतर लड़ा-झाड मेरी ओर से ही आरभ होता। वह भुनभुनाता तो अवश्य था किन्तु पराजय स्वीकार कर अपने बड़प्पन का प्रमाण भी प्राय वही दिया करता। उस चिढाने खिझाने मे मुझे सदैव एक विशेष प्रकार का आनद आता था। सत्य बात तो यह है कि आशुतोष भैया हमारे लिए आकर्षण के एक बडे केन्द्र थे। उनके सहयोग से राजापुर म प्रकृति का कण कण मानो चहकने लगता। शरारतों की समस्त योजनाएँ अधिकतर मैं ही बनाया करती और उनके क्रियान्वयन की सूत्रधार भी मैं ही हुआ करती। यह सब कचन के वश की बात नही थी। तटस्थ दर्शक के रूप म उल्लसित हो जाना ही उसका स्वभाव था। आशुतोष भैया को तग करने खिझाने की मेरी योजनाओं का विरोध भी वह कभी कभी कर लिया करती।

कचन राजापुर वाले चाचा चाची की बहुत दुलारी थी। प्यार उनका मुझे भी कम नही मिला फिर भी कचन म कुछ ऐसा था जो सबका सहज ही आकर्षित कर डालता। कहते हुए सकोच होता है, पर फिर भी यह सत्य है कि सुदर मैं भी कुछ कम नही थी। हो सकता है, मेरे रूप की तेजस्विता प्रभावित तो करती हो, पर बाध न पाती रही हो। इसके विपरीत कचन मे एक सौम्य था। उसका अन्तर्मुख मौन उसके व्यक्तित्व को विशिष्ट शालीनता प्रदान करता। स्निग्ध और शीतल कमनीयता से परिपूरित था उसका रूप। फिर भी उसके प्रति मुझे कभी ईर्ष्या का आभास नही हुआ। अपनी तेजस्विता के मोहपाश मे जकडी, अपने मे ही मग्न रहना मुझे अति प्रिय था।

राजापुर म हमारी प्राय बुलावट का कारण मानसिक भी कहा जा सकता था। विचित्र बात है कि जिस देश म कन्या का जन्म घर भर के लिए शोक का कारण माना जाता रहा है वहीं उस घर मे बिटिया का न होना—अति शून्य की सृष्टि भी करता है। राजापुर वालों के साथ भी कदाचित कुछ ऐसा ही था। बहुत मनौती के बाद ही सतान हुई—आशुतोष। बिटिया की लालसा करते करते त्रिभुवन चाचा जी और चाची जी की सारी उम्र बीत गयी। इसी से एक एक साल म कई कई बार हमें

'बिटिया बिटिया' संबोधन करते हुए उनका कंठ नहीं सूखता था। तरह तरह से वे हमसे लाड लडाया करती।

बीस पच्चीस कोस की मंजिल तय करके उस दिन जब हम राजापुर पहुँचे तो अभी दोपहर ही थी। लेकिन आकाश बादलों से ढँका होने के कारण लग रहा था कि सांझ गहरा आयी है।

राजापुर वाली चाची जैसे हमारी ही प्रतीक्षा में द्वार की ओर मुख किये बरामदे में बैठी थी। मोटर रुकते ही कुरसी से उठ खड़ी हुई और चंद कदम चलकर हमारी ओर आ पहुँची। हम दोनों के अभिनन्दन के उत्तर में आशीर्वादों की झड़ी लगाते हुए अपने दोनों पार्श्वों में हमें समेट लिया। हमारी इठलाहट का तब क्या कहना! उसे व्यक्त होने की राहें नहीं मिलती थीं।

बरामदे में पहुँच हम लोग कुरसियों पर बैठे और राहत की बड़ी साँस ली। जैसे कितना लंबा सफर तय करके चले आ रहे हों। चाची बोलीं, काफी थक गयी लगती हो तुम लोग!

मैंने तुरंत कहा और क्या चाची जी! सड़क भी तो बड़ी शानदार बनी है! वो धक्के खिलाये हैं वो धक्के खिलाये हैं—मोटर ने रास्ते भर कि बदन का जोड़ जोड़ हिल गया। सच्ची चाची जी सड़क हो तो एसी! तभी तो पता चले कि भई गाँव जा रहे हैं! वरना देहात और शहर में फर्क क्या रह जायगा?

मेरे मुँह का ग्रामोफोन जब एक बार आरंभ हो जाता, तो उसको रोकना कठिन होता। मैं अभी और भी जाने क्या कुछ कह जाती, किंतु कंचन ने अपने पैर से मेरा पैर दबाकर मुझे रोक दिया।

चाची जी ने अवश्य लक्ष्य किया होगा, उसी क्षण वे मुसकरा भी पड़ी थीं। पर क्या दिन थे वे भी! बातों की झड़ी लगती रहने का वह लोकोत्तर आनंद वह सौभाग्य रूठ चुका। तब कंचन की वर्जना और चाची जी की हँसी भी मेरी कतरनी-सी चलती जुबान का रोक नहीं पाती थी। जाने कैसे मेरे मुँह से निकला, कसम से चाची जी, अब तो ये हाल है कि यहाँ से लौटने के नाम पर दम निकलता है। मेरी न मानो तो कंचन से ही पूछ लो न! और कंचन को हलका सा टहोका लगाते हुए मैंने कहा, क्यों

री बोलती क्या नहीं अब ' क्या कहा था तूने रास्ते में ?"

कंचन ने रास्ते में क्या कहा था,इसका तो मुझे भी कुछ पता नहीं था। पर मेरी जीभ का क्या भरोसा जाने कब क्या कह जाये ! आज उस क्षण को याद करती हूँ तो लगता है कि अनजाने में ही कही गयी मेरी उस बात की चाची पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी।

सचमुच उनकी प्रौढ़ मुखाकृति पर पुलक का एक ज्वार-सा लहरा आया। वक्ष पर विह्वलता समा गयी। दृष्टि में एक अनचीन्हे ममत्व की रश्मियां उभरीं और बरामदे के वातावरण में घुम गयीं। प्यार से एक हल्की सी चपत उन्होंने मेरे गाल पर जड़ दी और आग्रहपूर्वक पूछा 'क्या कहा था कंचन ने ?'

मैंने शरारत भरी आंखों से कंचन की ओर देखा और फिर चाची से बोली "इसी से पूछ लो चाची, मैं नहीं बताऊँगी।'

कंचन की मनःस्थिति उस समय ऐसी लग रही थी,मानो वह उठकर कहीं भाग जाना चाह रही हो। भागने की कोई राह न मिल पाने से, वह जमीन में गड़ी सी जा रही थी। उसके कपोल कानों तक अंगारों से दहक उठे। लंबी पलकों के बोझ से झुकी आँखें और अधिक झुक गयीं। चाची जी ने निहोरा करते हुए कहा, ' कंचन, शरमा क्या रही है ? तू ही बता न ना, क्या कहा था भला !'

उत्तर में कंचन ने अस्पष्ट सा जो कुछ भी व्यक्त किया, उसके अनन्तर कुछ भी नहीं कहा मैंने। चाची जी का संतुष्टि न हो पायी, कुछ जानने की ललक में उन्होंने अपनी उत्सुक दृष्टि मुझ पर केंद्रित कर दी। मेरी हँसी थी कि रुकने में ही न आये। मुँह से रूमाल सटाकर मैंने कहा ' चाची, यह कहती थी कि मन होता है मैं बस यहीं राजापुर में रहने लगूं।'

मेरे इस मनगढ़ंत सवाल से चाची को कितना आनंद हुआ होगा आज उसकी सिर्फ कल्पना ही कर सकती हूँ। पर तब उन्होंने जो कुछ कहा था वह आज भी पत्थर की लकीर सरीखा मन पर अंकित है। उनका उत्साह तब देखते ही बनता था। हाथ बढ़ाकर उन्होंने कंचन को अपनी ओर

खींच वक्ष से सटा लिया। वह तनिक भी कसमसायी नहीं। जैसे लोह चुम्बकीय आकर्षण के वशीभूत खिंचता चला जाय, वैसे ही कंचन भी खिंच गयी। कुछ देर पहले उसे भाग पाने की राह नहीं मिल रही थी, पर अब चाची के वक्ष से सटकर निश्चिन्त हो मेरी चुहलों से उसने स्वयं को सुरक्षित अनुभव किया होगा।

चाची का लाड़ दुलार स्वर्गोपम था। उनके वात्सल्य के आँचल में सारी दुनिया समा जाती—इस बात को मैं आज भी याद कर विभोर हो जाती हूँ।

कंचन को उन्होंने वक्ष से सटाया, तो मुझे भी पास खींच लिया। भावना में खूब गहरे डूबा उनका स्वर बिलकुल ज़रा-सा कंपायमान था, "तो मैं कब चाहती हूँ रे कि तुम यहाँ से जाओ?"

मैंने मुसकराते हुए चाची को देखा। वे बोलीं, 'हाँ, और क्या? रह जाओ यहीं। तुम लोग आते हो तो घर भरा-पूरा लगने लगता है। पर...।

इसके साथ ही उनके शब्द अस्पष्ट हो आये। पता नहीं, क्या कहना चाहती थी वे! लगा कि वहीं किसी और कल्पना में खो गयी थीं। कंचन तब तक फिर सीधी हो उठ गयी। मुझे फिर चुहल सूझी तो कहा, 'न बाबा! मैं तो यहाँ रहने की नहीं। इतनी देर से आये बैठे हैं और अभी तक खिलाने पिलाने की कोई बात ही नहीं।'

कंचन ने मेरे कथन को जैसे सुना ही न हो। धीरे से पूछा, "चाचा जी कहाँ गये हैं? और आशुतोष भैया...?"

चाची मुसकरायी। यह मुसकराहट, आज लगता है बहुत गहराई से उभरी होगी। हम दोनों की बातों का उत्तर एक साथ देते हुए उन्होंने कहा, 'मुझे क्या पता नहीं था कि तुम दोनों आज एक साथ पधारोगी? इसीलिए पहले से ही खूब तैयारी कर रखी है। तुम्हारी मनपसंद खीर भी पकवायी है। पर सोचा कि तुम्हारे चाचा जी लौट आयें तो सब के सब एक साथ बैठेंगे। आशुतोष भी उन्हीं के साथ गया है।

मैंने कहा, 'तब तक कौन प्रतीक्षा करेगा, चाची जी? वो अपने कालेज की पंजाबिन आया रामप्यारी कहा करती है 'पुत्तर सौ काम छोड़कर नहाओ और हज़ार काम छोड़कर खाओ।' हमारी मनपसंद चीज़ जब

बनायी ही हमारे लिए गयी है तो लाइये, उसका 'उद्धार' ही किये देते हैं। इसम किसी और का दखल हम कैसे सहें?"

चाची खिलखिलाकर हसी, पर कचन ने बुरा सा मुह बना लिया। इस बार बोले बिना उससे रहा नही गया। "इसे बकने दें आप! हम उनका इतजार करेंगे।"

मुझ पर जैसे तब का नशा सवार था। कहा, "हम क्यो करें इतजार? यह काम तो उन्ही का था। हमे लिवा लाने का मोटर भिजवा दी और आप गायब हो गये। आखिर मेला देखने हम किस समय जायेंगे?" — कहकर मैंने बनावटी गुस्से मे मुह फुला लिया। इस पर चाची जी को खूब प्यार आया। हलकी-सी चपत मेरे गाल पर जडते हुए उन्होंने मीठी झिडकी दी, "सचमुच तू है बडी शैतान।"

"तभी तो मुझे देखकर कचन बुरा सा मुह बना लेती है" मैंने उसे फिर खिझाया। वह सिर्फ मुसकरा दी।

चौकते हुए हम सबने मुख्य द्वार की ओर देखा। तेज झटके से एक जीप कार आकर रुकी थी और उसमे से उतर लबे लबे डग भरते हुए चाचा जी के पीछे पीछे आशुतोष भी चले आ रहे थे। हम बरामदे म ही बैठा पाया तो दोनो आह्लादित हुए। पर्याप्त दूरी से ही चाचा जी ने नारा लगाया, "लो राजकुमारियां पधार गयी!"

कहते-कहते वे निकट ही आ गये। हमने अभिवादन किया। मैंने धीरे से एक फुलझडी भी छोड दी। उन पर मेरा अभियोग था कि हम आवश्यकता से अधिक प्रतीक्षा करायी गयी है।

और चाचा जी का एक उन्मुक्त ठहाका बरामदे म गूज गया। आशुतोष भी मुसकराये बिना नही रह पाया। कचन तब मुग्ध दृष्टि से उसी को निहार रही थी।

ऐसा नही कि आशुतोष ने इसे तनिक भी लक्ष्य न किया हो। तभी तो कचन की नजरें झुक गयी और झुकी तो उठा नही पायी। अधमुदी पलको म ही उसने उलाहना-सा देते हुए कहा, लेकिन बहुत धीरे से, "आप इतने दिनो से हमारे यहाँ आये क्यो नही?"

आशुतोष ने उसके इस उलाहने का कोई भी स्पष्ट उत्तर तो निश्चित ही

उमी व्यथा के वशीभूत हो, आशुतोष के प्रति रोष की अनुभूति होती रही है। वरना उसका सामीप्य क्या मुझे ही भला कुछ कम गुदगुदाता रहा! जिस क्षण की चकाचौंध में वह दिग्भ्रमित हो उठा था, उस क्षण के भारक प्रहार से कंचन के देह मन प्राण को क्या कभी मुक्ति मिली? पश्चात्ताप की अग्नि शिखाओं में वह धू धू कर जलती रही। आशुतोष भी निश्चित ही जला होगा। इस आंच की लपट ने आशुतोष को भी कुछ कम नहीं झुलसाया होगा।

ये तमाम बातें लेकिन बाद की है। मुझे भी बहुत बाद में मालूम हुई। तब, जब कंचन के जीवन में कमल का सामयिक तिरोभाव हो गया, जब वह अकारण परित्यक्ता नारी की अथाह वेदना को भोगने पर विवश थी। मेरे वक्ष में सिर छिपाये, सिसकते हुई कंचन ने अतीत के समस्त घटना क्रम को ब्योरेवार मुझे बताया था। समय रहते ही तमाम बातें यदि बतलायी होती तो इतना अनर्थ भला क्या होता? तब तक तो बहुत देर चुकी थी।

लेकिन बरसों बाद कंचन ने कथा के केन्द्र बिन्दु जिस दुर्गम क्षण की व्यथा मुझे रो रोकर सुनायी थी, कथाकार की सुविधा के दृष्टिकोण से मैं उस उसी क्रम में दुहरा रही हूँ जिस क्रम में वह घटित हुई। और कोई विकल्प मुझे नजर नहीं आता।

उस दिन आशुतोष के साथ उस देहाती मेले में पहुँचकर मेरी चपलता को अभिनव विस्तार मिला। मन ऐसा रमा कि समय की सुध बुध बिसर गयी। कंचन का अस्वाभाविक गाम्भीर्य वहां पहुँच चपलता के कई कई सांचों में ढलकर चहकने लगा था। देह सहित उसके प्राण एक अनोखे पुलक से स्पंदित हो उठे। चरमराते हिंडोले में बैठ चक्राकार घूमने का वह कैसा रोमांचक अनुभव था! आनंदमूलक भय की सिसकारियां उसकी दुग्धफेनिल छलछलाती हँसी के साथ एकाकार हो वातावरण में वात्सल्य का कैसा उद्दीपन बिखेर रही थी! मदारी के बंदरों भालुओं की अपूर्व नृत्य मुद्राएं निरख आंचल मुंह पर रख वह कितना हँसी थी! उसकी पुष्ट गोरी कलाइयों में चूड़ियां पहनाने से पूर्व वह अधेड़ मनिहारिन

वह एकाएक ठिठक कर रह गयी थी! अपनी गुदगुदी हथेली में उसका हाथ थाम कर कई क्षण तक उसकी आकृति को निरखती रही। कैसी थी यह दृष्टि कि बचपन के पलक मुँद-से गये! वह अव्यवस्थित-सी हो आयी। तभी चुन्नी फहराती मनिहारिन ने एक मीठी चुटकी ली — 'अबहूँ तोहार ब्याह काहे नाहीं भया हो, बिटिया?'

और वह लाज से दुहरी हो गयी। इस प्रकार लज्जा की यह अनुभूति भी उसके लिए अपूर्व थी। लज्जा का यह रूप उसके लिए अनोखा था। उसके भीतर जाने कहाँ तो एक गुदगुदी हुई, पर शीघ्र ही वह शमन भी हो आयी। कृत्रिम क्षोभ-युक्त स्वर में कहा — धत्! यह भी कोई पूछने की बात है!

मनिहारिन वात्सल्य से मुसकरायी, 'तो' तुम्हें बताव अब अउर का पूछें? हमार एक ठो बात गाँठि मा बाँधि लेउ बिटिया! जरूर तू कहूँ के रानी हुइहो।' और इसके साथ ही उसने कंचन की मेहँदी रची हथेली को थोड़ा भींच चूड़ियों को कलाई की ओर सरकाना शुरू किया। बीच-बीच में रह रह कर उसकी कलाई लरज उठती और कोई एकाध चूड़ी मुरक जाती।

मनिहारिन ने उसके रानी होने की बात कही थी और इसी प्रसंग को बार-बार उठा कर एक सहज निष्कपट ईर्ष्या से मैं उसे छेड़ती रही। निकटस्थ अमराइयों में झूला पर झूलती महिलाओं के कंठों से कजरी के मीठे सुर लगातार उभर रहे थे—

सावना की झरिया में
ज्योनवा परागल।
चाहे भैया जीमें चाहे जायँ हो,
सावनवा में न जइब ननदी

बरखा की तरह गीतों की भी झड़ी लगी थी। एक और स्वर हवा में तिरता हुआ निकट पहुँचा और गुदगुदा गया—

छायी काली बदरिया
गगनवा हो राम!
घन बदरा अँगनवा झुकन लागे हो

मोर सैंया विदेसवा से न आयो रे ।

और फिर गीत के बोल परिवर्तित हुए

कैसे खेलू सावन मे कजरिया
बदरिया घिर आयी सजनी ।
हौं ता जात मे अकेली
नही सग अरू सहेली
गुडा छेक लियो हांऽ गुडा छेक लिया
मोरी डगरिया
बदरिया घिर आयी, सजनी ।

तीज का पर्व ! यही तो दिन हैं झूलने के, चहकने के, गाने के ।

जन जीवन के मानसिक स्वास्थ्य के सदर्भ मे इन लोकगीतो का कितना बडा दाय है—यह अनुसधान का विषय हो सकता है। प्रत्येक अभाव की भावमय परिणति, प्रत्येक कुठा का शमन क्या इनके माध्यम से सम्भव नही ? कब-कब की बिछुडी सखियां फिर से मिल बैठती है। अपने अपने सुख-दुख परस्पर कह-सुन लेती है, तो जी का बोझ हलका हो जाता है।

कजरी के बोल धीमे होने लगे, मरी बार-बार की ठिठोली से कुढ कर कचन कुछ दूरी रख अलग अलग चलने लगी। एक सीमा से अधिक चुहल वह सहन नही कर पाती। अपना-अपना स्वभाव ! अभ्यास नही बना पायी तो नही ही बना पायी। इसीलिए चलते चलते एक समान्तर दूरी उसने बना ली। सोचा होगा—बकने दो जो मो मुह मे आये। मुझे क्या ?

और एकाएक जाने क्या हुआ कि वह समान्तर दूरी लुप्त हो गयी। उस सक्षिप्त सी दूरी के स्थान पर दूरियो का अतहीन क्रम आरभ हो गया।

क्या उन दूरियो को वह कभी लाँघ पायी ? यह प्रश्न कचन ने स्वय से बार-बार किया, पर कभी कोई उत्तर मिला नही। ऐसा क्या हुआ उसके साथ ? एक माया-नगरी थी जैसे आखो के सामने। देखते-देखते ओझल हो गयी। अब दृष्टि-पथ पर था उजाड बियावान। कजरी के मधुर बोल करुण क्रन्दन मे परिवर्तित हो गये। अमराई के बिरछ प्रेतो का जमघट बन गये। गोरी कलाईया पर चूडियो की छनक जाने कसे सीत्कारो का गुजाने लगी ! ऐसा होना तो नही चाहिए था। क्या हुआ ऐसा ? दुनिया के मेले मे अभी प्रथम

चरण ही तो रखा था और भटक गयी। इतना विवेक कहाँ कि स्वय पथ की खोज कर ले ? इसलिए तो नाना की उँगली थाम कर ही ससार म होशियारी से सोच-समझ कर भ्रमण करना पडता है। उँगली छूटी कि भव सागर की उत्ताल तरगो के भयानक थपेडो से आपके अस्तित्व की खैर नहीं। जाने किन अतलान्त गहराईयो म खोकर रह जाना होगा !

अकस्मात कचन को लगा कि वह हम से बिछुड गयी है। आतुर दृष्टि से इधर-उधर ताका तो हम दोनो म से कोई दिखाई न दिया। मेले की भीड भाड म वह अकेली रह गयी। हाय राम ! अब क्या करे ? गाँव घर बाट अकेली कैसी तय कर पायगी ! सिर पर आमपास के पेडो की फुनगियो पर अस्तगत सूय की निम्नज किरणें साँझ के आगमन का सकेत बहुत पहले से दे चुकी थी।

कचन रोने रोने को हो आयी। चहरे का रग उड गया। और वह मेले के इस छोर से उस छोर तक बदहवास हो भटकने लगी। शायद कोई कहीं दिखाई द जाय। आशुतोष या मैं न भी मिलें तो अन्य कोई परिचित ही सही, जो उस गाव के सीवान तक तो पहुँचा ही दे। फिर चिंता की कोई बात नहीं। वहाँ खेतो के बीचो बीच गुजरती पगडडियो पर चलती हुई वह मजे से घर पहुँच लेगी। राह म सबसे पहले दिखाई देगा सीवाने के पास ही खडा पीपल का वह पुराना पेड—विरम दव ! मनौतियो के धागे उससे लिपटे रहते हैं। जड के पास दो चार मूर्तियाँ भी रखी हैं। शालिग्राम की बटिया भी है एक। थोडा और आगे चलकर एक पुराना मदिर है, जिसका जीर्णोद्धार त्रिभुवन नारायण चाचा जी ने ही कराया था। एक वृद्ध पुजारी वहा रहते हैं और भगवान की सेवा उपासना किया करते है। वहा से पग डडी दायी ओर घूम जायगी और खेतो, खँडहरो, अमराईयो से गुजरते हुए मील भर और चलना होगा। फिर कोई चिंता नहीं। कच्ची पक्की सडक या भी एक रास्ता है तो अवश्य पर उसे क्या पता ? किसी तरह एक बार उस पुराने मदिर तक ही पहुँच जाय। आशुतोष ने जीप भी तो वहीं खडी की थी। हो सकता है व वहीं पहुच कर उसकी प्रतीक्षा कर रहे हो !

मेले के इस छोर से उस छोर तक हमारी खोज म भटकती हुई कचन जाने कितना कुछ सोच रही थी, पर सोचने भर से अब क्या होता ? सकट

समक्ष उपस्थित था। अस्तगत सूर्य की निस्तेज रश्मियाँ पश्चिम क्षितिज में जा दुबकी थी। मेला उठ रहा था। भटकते भटकते वह हाँफ गयी। तनिक रुक कर फटी-फटी आखो से उसने आकाश की ओर ताका और हाथ जोड कर मन-ही मन प्रार्थना करते हुए कहा, हे राम जी ! अब क्या करूँ ? कहा जाऊँ ? यहा तो जान-पहचान का भी कोई नही। किसी तरह एक बार घर पहुचा दो बस ! फिर कभी भूल कर भी मेले म पाव नही रखूगी। हे राम जी !"

कहा थे तब राम जी ? थे तो क्या सुना न होगा ? फिर सुन कर भी अनसुना क्या किया ? या फिर ठीक से न सुना होगा। क्योकि कचन घर तो पहुँची थी—निस्सन्देह ! पर क्षत विक्षत मन-प्राण लिये हुए। आयु के जाने कितने बरस तब वह लाघ चुकी थी। समय का रथ समय से पूर्व ही बडी तेजी से उसे रौदता हुआ गुजर गया। तब भी वह जीवित रही। भाग्य म मृत्यु बदी नही थी इसलिए अथवा जिजीविषा के बूते पर, जिसके मूल म प्राण का वह सारा तत्व निहित था जिसे उसने समय के तेजी से गुजरने की प्रक्रिया से विराम पाया था। अग्नि ने अपना प्रचड रूप लिये उसे भस्मीभूत करने का कैसा असफल प्रयास किया कि वह भस्म न हुई, बल्कि और निखर गयी। कुन्दन की भाइ। कचन सचमुच कुन्दन ही थी, अन्यथा आशुताप का उसने कभी क्षमा न किया होता।

उटी करण कथा है उस क्षण की। वही तो केन्द्र बिन्दु है—मूल आधार है जिसके चारो ओर कचन का सम्पूर्ण इतिवृत्त घूमता रहा जिस पर उसके भविष्य का जैसा-तैसा भवन निर्मित हुआ। कैसी विचित्र बात है ! आलम्बन और उद्दीपन के शास्त्र सम्मत होते हुए भी शृगार का परिपाक न हो पाया। जाने किस रस की निष्पत्ति होती है और अनन्तता का उसी के गर्भ से जन्म होना है करुणा का। तभी तो कहा कि बडी करुण कथा है। उस क्षण की ही नही, बल्कि कचन के सपूर्ण जीवन की। कथा का समापन शम म हो यदि ना सम्मुख बडी उपलब्धि है। वह उपलब्धि कचन का भी हुई हो शायद !

तनिक रुक कर फटी फटी आखो म उसने आकाश की ओर ताका और मन ही मन हाथ जोडकर प्रार्थना करते हुए कहा था हे राम

राम जी ने जान क्या तो सुना ! और उसकी प्रार्थना का परिणाम सिर्फ यह हुआ कि पश्चिमी क्षितिज म जा डूबते सूरज का पहिया बिलकुल कीचड म धँस गया। किरणों का निस्तेज प्रभामडल जो थोडा-बहुत था भी, तिरोहित हो चला। अब आकाश ललछौंहा नहीं, धूमिल था। जाने कहाँ स आकर उस पर स्याहियाँ पुन गयीं।

और इसके बाद !

पुरवा अपने प्रबलतम वेग स बहने लगी। मले से टाट-परदे फाँद उठे—फड फड । सनसनाती हवा पेडो की पत्तियो से टकराती तो अजीब-सी भयानक ध्वनि उभरती—सन-साँय-साँय-साँय ।

कचन को कुछ भी सूझ नहीं रहा था। उसके प्राण मुह को आ रहे थे। फिर भी कुछ तो किया ही जाना चाहिए। करना ही होगा। क्यों न गाँव की दिशा की ओर दौडने लगे ? अकेली ? बरसात शुरू हो गयी तो फिर कही ठौर नहीं। आसमान तो काला पड ही चुका है। एकाध गरज भी सुनायी दी थी। जी जान से यदि दौड जाय तो हो सकता है कि बिछुडे साथियो से अधराह म जा मिले। तब कोई चिन्ता नही रहेगी।

सचमुच वह दौडने लगी। दौड का अभ्यास कुछ तो है ही।

दौड और दौड म लेकिन बहुत अतर होता है। खेल-खेल म दौडा जाता है तो एक निर्मल आनद की प्राप्ति होती है—किसी अनिर्वचनीय सुख की अनुभूति। ठीक ऐसे ही सुख की अनुभूति तब भी होती है जब व्यक्ति उच्चाशय हो किसी महत्वपूर्ण उद्देश्य के प्रति समर्पित हुआ उसकी सिद्धि के लिए दौडता है। मार्ग की किसी बाधा का भय उसे नहीं होता।

बाधाएँ बल्कि दौड के आनद को द्विगुणित कर देती ह। कचन की दौड इनमे से किसी भी कोटि म नहीं आती। यहाँ आनद नहीं, भय था। सुख नहीं कुशकाओ के विकराल आवर्त थे। ऐसे विकराल आवर्तो से बाहर निकलने का प्रयास और भी अधिक त्वरा से चक्राकार घूमने पर विवश कर देता है। तब भी प्रयत्न की अपनी सार्थकता है। परिणाम चाहे जो हो। इसीलिए कचन भी दौड रही थी ।

फिर परो मे उग पख सहसा गीले हो आये। कडक के साथ बडी भयावह बिजली कही गिरी थी। सब कुछ जल गया होगा—पत्ता पत्ता,

बूटा-बूटा, गाछ, झाड़ियाँ, लताएँ। शेष रह गये होंगे-स्याह धब्बे या फिर धरा का वह सिसकता हुआ अंश, जिसकी स्वच्छ निष्कलुष हरीतिमा का पावन शृंगार क्षत विक्षत हो चुका होगा। तब आकाश के परदों में जैसे छेद हो गये थे। तभी तो मूसलाधार बरसने लगा।

सिर्फ फड़फड़ाहट शेष थी उस पर भी विराम लग गया। आश्रय की खोज में वह अपनी भीत दृष्टि चारों और दौड़ाने लगी। कहीं कोई आदम न आदमजाद। सिर्फ गूंजता हुआ सन्नाटा और एकमात्र उसी की अनुगूंज जो समस्त भयों और कुशंकाओं को द्विगुणित किये देती। या फिर बूंदों का स्वर। कानों पर हथौड़े से बज रहे थे। मस्तिष्क कुंद। इन प्रहारों से आज वह अवश्य चकनाचूर हो जायगा। विचार-तंतु छिन्न भिन्न होकर आसपास की पंकिल धरा पर छितरा जायेंगे और उसी से एकाकार हो रहेंगे। फिर उनका पता नहीं मिलेगा।

पास के शीशम पर बैठे किसी पक्षी ने पंख फड़फड़ाये। झाड़ियों से झींगुर चीख उठे। कंचन जड़ स्तब्ध! उसने चाहा कि रो दे, पर रो नहीं पायी। रुलाई उसे यों भी बहुत कम आती है। उसका रहा-सहा दिशा ज्ञान भी अब लुप्त हो चुका था फिर भी आश्रय की खोज में वह एक ओर को चल ही दी। जीवन में ऐसा भी होता है और ऐसे में भी चलते जाना ही जीवन की दुर्निवार शान है। पराजय-बोध से निष्क्रिय हो रहने से बेहतर है कि व्यक्ति जय के लिए निरंतर गतिमान रहे। न मिले विजय। सक्रियता की आँच तो नहीं न आने पायेगी! यह भी तो स्वयं में कुछ कम प्राप्ति नहीं।

और चलते चलते वह पगडंडी के एक मोड़ तक पहुँच कर ठिठक गयी।

पगडंडी से नीचे उतर दायीं ओर को तनिक दूरी पर वृक्षों का एक झुरमुट था और उसके दूसरे छोर पर कोई खंडहर सा दृष्टिगोचर हो रहा था। बिजुरी चमकती तो उसके प्रकाश में वह क्षण भर को बिलकुल स्पष्ट नजर आने लगता। और फिर घुप्प अँधेरे में डूब जाता। पगडंडी से नीचे उतर कंचन ने वहीं पहुँचने का निर्णय लिया। बस निर्णय का यह उसके जीवन को अब तक निरंतर खोखला बनाता रहा। आरंभ में तो

निर्णय की सीमाओं पर वह पूरी न समायी थी। लेकिन अब मैं सब समाप्त हो गया।

[illegible] में ही आशुतोष से उसकी अनोखी भेंट हुई थी। उसी को खोजता वह भटक रहा था। दूर से कुछ ठौर-ठिकाना पता नहीं चल पाया था कि कौन होगा? यह सोचकर वह पत्थर ही बन गयी थी। पाँव मन मन भर के हो गये। भागना तो दूर की बात कदम उठाना तक भारी हो गया। मन में उस क्षण कैसा भयंकर उद्वेलन था! जाने कौन होगा? जाने अब क्या होगा? लेकिन जब ही दूर से खोजती-सी आवाज उभरी तो उसकी जान में जान आयी। आशुतोष का स्वर था। उसी को खोजता भटक रहा था। उसी का नाम लेकर उसने पुकारा था।

प्रत्युत्तर में वह जोर से चिल्लाना चाहती थी ताकि अपनी उपस्थिति का भान करा सके, किन्तु विह्वलता के अतिरेक से कंठ अवरुद्ध ही बना रहा। प्रसन्नता के इस संकट से मुक्ति का विचार वह लें, जिसने उसके स्वरों को कील दिया। नम्रता के स्थान पर अब उसमें कंपन था।

आशुतोष निकट से निकटतर होता चला आया। इतना निकट कि अंधकार में दोनों एक दूसरे की धुंधली आकृतियों को ठीक से पहचान सकें।

'कौन? वचन?'

प्रत्युत्तर में वचन थोड़ा और काँप कर रह गयी। मन की अतिशय विह्वलता ने अभिव्यक्ति के लिए आँसुओं की शाश्वत विधा को ही अपनाया।

आशुतोष कुछ और निकट आया।

कई क्षणों की उस चुप्पी के गर्भ में जाने क्या सृजन चल रहा था! अत्यधिक प्रसन्नता के फलस्वरूप ही वचन बोल पायी, 'हाँ मैं हूँ—वचन।'

और इसके साथ ही भीतर के आकाश पर एकत्रित हो आया समूचा गुबार पलकों की कोरों के बाँध तोड़कर निर्द्वन्द्व बह चला।

वचन की विह्वलता का कोई अमूर्त स्पर्श आशुतोष तक अवश्य पहुँचा होगा। तभी तो भावावेश में वह उसके बिलकुल निकट चला आया कि पूरक और रेचक के क्रम में दोनों के श्वास परस्पर टकराने लगे।

कहा खो गयी थी तुम ? कब से खोजते खोजते परेशान हो रहे है !"

कचन कुछ बोली नही। बस, रोती ही रही। आशुतोष ने उसके कधे पर हाथ रखा और कहा, "अब क्यो रो रही हो ? आ तो गये तुम्हे लेने। मेले-ठेले मे चलते है तो सब के साथ साथ रहते है। अब कही जाकर जान मे जान आयी है।'

कधे पर आशुतोष की हथेली का स्पर्श पाकर निमिष भर को कचन सिहरी थी, लेकिन कहा कुछ नही। रोती ही रही, मानो अब तक उठायी गयी तमाम परेशानियो के उलाहने सिर्फ आसुओ से ही देने का निश्चय किये हो।

इस बार आशुतोष के स्वर मे अजीब सी कँपकँपाहट थी। 'बारिश बहुत तेज हो रही है, कचन ! वहा खँडहर के उस बरामदे मे जरा देर रुक जाते है। आसमान थोडा रुके तो चल पायेंगे। आओ।"

कचन का मन हुआ था कि इकार कर दे और कहे कि हम भीगते हुए ही लौट चलेंगे, लेकिन नही कर पायी। आशुतोष से सकुचित होने का कोई कारण नही। फिर भी मन किसी अव्यक्त कुशका के नागपाश मे जकडा सा जा रहा था।

आशुतोष ने जैसा कहा, कचन ने ठीक वैसा ही किया भी। खँडहर के उस अधटूटी छत वाले बरामदे मे पहुँच कर दोनो खडे हो रहे। दोनो के बीच वह व्याप्त मौन पहली दृष्टि मे परस्पर अपरिचय का ही बोध कराता था। इस नये अपरिचय की दूरियो को लाघने की बात किसके अतर मे किस रूप मे वर्तमान थी क्या कहा जा सकता है ! पर कचन की सिसकियां अभी थमी नही थी।

'अभी तक रो रही हो कचन ?" कचन पिघल गयी। हृदयाकाश के प्रत्येक क्षितिज मे अनगिनत प्रतिध्वनियाँ। मानो आशुतोष से पूछ रही हो, 'अब क्या रो कर भी अपना आक्रोश व्यक्त नही कर सकती ?

प्रकट मे वह बोली ' क्यो न हम भीगते हुए ही लौट चलें ? कितनी देर तो हो चुकी है ! सब चिंतित होगे।"

' पहले तुम चुप हो जाओ। स्वस्थ हो लो —कहने के साथ ही आशुतोष कचन के बिलकुल निकट आ गया। उसके कधो पर हाथ रख

थाडा चुका और कांपती हुई फुसफुसाहट म कहा, ' तुम्हे मरी सौगध, अब रोना नहीं ।"

कचन की लबी पलकें फ्ल गयी । यह अप्रत्याशित क्षण जीवन की अपूव अनुभूति थी । लगा कि शरीर गुरुत्वाकषण से मुक्त हा आकाश म स्वच्छन्द विचर रहा है । आशुतोष भया सचमुच उसे कितना चाहत है ! उसके न मिलने पर कितने चिंतित हो रहे थ ! इस आंधी पानी म उसक लिए भटकते फिरते रह ।

उसने पलकें उठाकर देखा । आशुतोष से दष्टि मिलत ही उसे लगा कि वह सम्माहन से ग्रस्त हो चली है । आशुतोष की दृष्टि म यह कसा नया भाव है ? इससे पूव तो ऐसा कभी नही लगा । कैसी अबूझ है वह चमक ! जैसे दा प्रज्जवलित उल्काएँ ! और श्वास म यह प्रकम्पन । वक्ष के भीतर यह हृत्पिंड उछलने का ही स्वर है न ? आशुतोष भया को यह क्या हाता चला जा रहा है ?

कचन के मस्तिष्क की सक्रियता पराकाष्ठा पर थी ! एक प्रबल झझावात उसके भीतर लहराया और वह लडखडा गयी—' आपको अचानक यह क्या हा गया है ?"

"कुछ भी तो नही । मुझे क्या होगा ? पर शायद कुछ हुआ चाहता है कचन ! तुम्हे दखते ही जाने क्या मुझे लगता है कि ।

आशुतोष की आवाज कही खो गयी। इसके आगे वह कुछ न कह पाया । पर जो कहना चाहता था उसे कहने के लिए वह थोडा और झुक गया । और कचन को लगा कि कोई उसे बलात अपनी ओर खीच रहा है । वह खिचाव इतना प्रबल है कि उसकी प्रतिरोध क्षमता उसका निवारण कर पाने म नितात असमथ है । उसे लगा कि उसके रक्तिम अधरो पर किसी न अगार धर दिये हैं और वह सुलग उठी है । लगा कि उसी पवित्रता को काइ बूद बूद निचोड रहा है । पता नही कसा भावोदय हुआ कि कपोलो स कनपटियों तक अगार दहक उठे । अतरतम मे कुछ चरमरा कर ढहने लगा सासा म तूफान उठ खडा हुआ । लगा कि वह पिघलते पिघलते समूची पिघल जायगी और नि शेष हो रहेगी । वह चीख क्यो नही पा रही ? उसका कठ अवरुद्ध क्या है ? ठीक ता है । इस निजन म उभरने वाली उसकी

प्रत्येक आवाज़ दिशाओं से टकरा कर निष्फल ही लौट आयेगी ।

और उस क्षण आकर्षण विकर्षण के मकड़-जाले में उलझी कंचन भीतर-ही भीतर छटपटाते हुए निढाल हो गयी । इससे पूर्व कि उसकी सांसों का तूफान उसे संज्ञाशून्य बना दे, अधरों पर रखे अंगारों की जलन कुछ पीछे सरक गयी। मानो कहीं दूर से आते हुए आशुतोष के स्वर उसे सुनायी दिये, 'मैं तुम्हें प्यार करता हूं, कंचन ! मैं ।

इसके आगे कंचन कुछ भी न सुन सकी । चेतना खोकर वह माटी के ढेर सी ज़मीन पर बिछती चली गयी। सिर्फ श्वास चल रहे थे। मान और अपमान का बोध, प्यार और घृणा का संघर्ष, आकर्षण और विकर्षण की ऊहापोह—सब लुप्त हो गये।

चेतना लौटी तो पाया कि उसके वस्त्र अस्त व्यस्त हैं। आशुतोष खंडहर के बरामदे की जर्जर भीत का सहारा लिये माथे पर हाथ रखे बैठा था और शून्य दृष्टि से उसी की ओर देख रहा है। कंचन से दृष्टि मिलते ही उसने आंखें झुका लीं। क्या वह कंचन कुछ सूझ नहीं पाया। संज्ञाहीनता की स्थिति में उसे लगा था कि आसपास कहीं भूडोल आया है धरा कांप रही है आकाश से अग्निपिण्ड बरस रहे हैं। प्रबल वात्याचक्र में वर्तुलाकार उड़ते हुए ये समस्त गाछ लताएँ और खंडहर—सब कुछ आसमान की ओर उड़ता जा रहा है। अब तो सब कुछ शांत है। प्रलय के बाद की अथाह शांति। लेकिन मन खाली सा क्यों है ? लगता है कि वक्ष के भीतर का हृत्पिण्ड अब नहीं रहा । शरीर भी थका थका सा है ! शक्ति का क्षय ! यह सब क्या हो गया क्या और कैसे हो गया ?

बिखरी हुई शक्ति का संचय कर वह प्रयत्नपूर्वक उठकर बैठ गयी। कुछ क्षण उसी प्रकार निवात, निष्कंप दीपशिखा सी उठी-बैठी जाने क्या सोचती रही और फिर एकाएक फूट फूटकर रोने लगी। धीमे धीमे सुरों में उभरता हुआ उसका आत्तक्रन्दन अंतर की उन अगम्य घाटियों में प्रसारित हो रहा था जिनका पता उसे इससे पूर्व कभी नहीं था !

आशुतोष इस रुदन से विचलित होता दिखायी दिया। सख्ती से होंठ भींच कर उसने आंखें झुका लीं ।

"अभी कुछ देर पहले मुझे क्या हो गया था ?"—कंचन की

म निश्चित ही उन्माद के लक्षण रहे होंगे, तभी तो भयातुर आशुतोष लपक कर उस तक पहुँचा और अपराध-बोध से विचलित हुआ सा बढ़कर उसका माथा सहलाता हुआ बोला 'तुम्हें कुछ नहीं हो सकता, कंचन! मैं तुम्हें कुछ नहीं होने दूंगा।"

कंचन ने रुलाई रोकने के प्रयत्न में दाँतों से अपना अधर काट लिया। उसके पलक सूज गये थे। विवर्ण कपोलों पर बिखरे आँसुओं की धाराएँ अब सूख कर भी उसे अपने अस्तित्व का बोध करा रही थीं। होंठ रह रह कर काँपते और वह सुबक उठती।

एकाएक वह शान्त हो रही। आज इन कुछ ही क्षणों में जितने आँसू उसने बहाये हैं उतने अब तक के जीवन में कुछ मिलाकर भी नहीं बहाये होंगे। अब और नहीं रोयेगी। लेकिन रुलाई के रुकते ही जब बीते हुए क्षणों को वह पुनः कुरेदने लगी तो उसके मृगनैन नेत्र आश्चर्य में और अधिक विस्फारित हो गये। उसका अपना मन ही उसे धिक्कारने लगा। वक्त उसे रौंदता हुआ कितनी तेजी से गुजर गया! क्या नहीं कर पायी वह प्रतिकार?

आत्मग्लानि के साथ-साथ घृणा की कालिमा ने उसकी चमकीली पुतलियों को आच्छादित कर दिया!

घृणा?

लेकिन किसके प्रति? स्वयं के या आशुतोष के? उस घृणा का कोई निश्चित स्वरूप वह निर्धारित नहीं कर पायी। किंतु प्रलय के उस दौर में मन-मंदिर का जो स्वर्णिम कलश एक बार टूट गया, उसका जीर्णोद्धार क्या कभी संभव हो पायेगा?

'मैं अभी इसी समय घर लौटना चाहती हूँ।

प्रयास करने पर भी अपने स्वर को वह सहज नहीं बना पायी।

आशुतोष और अधिक कुंठित हुआ। फिर भी स्वर को दृढ निश्चय की सान पर चढ़ाते हुए आत्मविश्वासपूर्वक ही उसने कहा— शपथपूर्वक कहता हूँ कंचन तुम्हारे साथ कभी विश्वासघात नहीं करूँगा। काश तुम समझ पाती कि मैं अंतर्मन से तुम्हें प्यार करता हूँ! तुम्हें हृदय के उस आसन पर मैंने प्रतिष्ठित किया है जिसे कोई अन्य छू भी नहीं सकेगा।

यह क्षणिक मोह नही, मेरे असीम प्रेम का ही परिचायक है जिसने मेरे सयम के बाध को तोड दिया। मैं तुम्हे पत्नी रूप म अगीकार करना चाहता हूँ। मैं तुम्हे ।"

कचन प्रस्तर-प्रतिमा सी अविचल बनी रही। मन म लेकिन भीषण उथल पुथल मची थी। सदेह नही कि आशुतोष उसे भी अच्छा लगता है। उसका सामीप्य उस प्रिय है। राजापुर की प्रकृति का एकमात्र वही तो एक पुरुष है जो किसी अव्यक्त अपूणता को परिपूणता का विशेष रग प्रदान करता है। सभव है कि कचन के अचेतन मे भी मिलनाभिलाष वतमान रही हो किन्तु प्रत्यक्ष रूप मे वह उसे सदव स्नेह और आदर का पात्र ही लगा। मन की भीतरी तहो से किसी अन्य रूप मे भी यदि उसे चाहा हो (जिसका उसे अभी तक कोई परिचय नही मिला था) तो वह भी कोई उपेक्षणीय अनुभूति कदापि न होती। आशुतोष ने उसे किसी भी रूप मे चाहा हो, किन्तु चाह की अभिव्यक्ति का यह रूप व्यक्ति के प्रति वितष्णा के अतिरिक्त और किस भाव को जन्म दे सकता है? इसम सुरुचि आखिर कहा है? क्यो न इसे सस्कारहीनता कहे? प्रेम का यदि यही स्वरूप स्थिर किया जायगा तो स्त्री पुरुष के परस्पर सहज और अकुठित सबधों का दम क्या घुटेगा नही? प्रेम नही हो, यह प्रेम नही हो सकता—कुछ और भले हो।

"तुम कुछ बोल क्यो नही रही, कचन?"—आशुतोष का कातर भाव स्पष्ट परिलक्षित था।

"मैं घर जाना चाहती हूँ।"

"रुष्ट हो?"

"किस पर?"

"मुझ पर!"

"नहीं।"

"तो?"

"स्वय पर! अपने भाग्य पर! अपने सवनाश पर! अपनी विवशता पर! आज प्रथम बार नारी की विवशता का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है।"

"क्या सचमुच मुझे क्षमा न कर पाओगी?"

"किस अपराध पर ?"

तुम्हारे प्रति जो अशिष्टता मुझसे हुई ।'

पुरुष के लिए यह कोई अपराध कहाँ है ? परंपरा हो तो निभायी है तुमने भी !'

'कंचन !' जैसे वीणा का नाई तार अधिक कसा जाकर झन से टूट जाय । ऐसा ही स्वर था आशुतोष का ।

प्रत्युत्तर में वह मौन रही ।

"मैं तुम्हें सहधर्मिणी के रूप में अपनाना चाहता हूँ ।"

'किन्तु मुझ में अन्तर्निहित सहधर्मिणी के रूप की उज्ज्वल मर्यादा को तुमने स्वयं अपने हाथों कलुषित किया है । जो संभावना थी, अब तो वह भी उठ गयी । अब क्या उस योग्य रह पायी हूँ मैं ?"

"इतने निष्ठुर बोल न कहो कंचन ! मेरा कलुष मेरा है । उसे स्वयं पर क्या आरोपित करती हो ?'

'और विकल्प ही क्या है ? इतिहास पुरुष ने यही विधान किया है । तुम्हारा कलुष ही स्वीकार लिया जाय तब भी कहाँ कोई संभावना शेष रह पाती है ! स्वयं कलुषित होकर मुझे अंगीकार करने का प्रस्ताव किस मुँह से कर पाओगे ? निरपेक्ष सबंधों की कल्पना की जा सकती है क्या ?

आशुतोष बिलकुल हार गया । उठते हुए बोला 'आओ, लौट चलें ।'

कंचन चुपचाप उठ खड़ी हुई । उनके चलने की आहट पाकर कोई पंछी कहीं पंख फड़फड़ा उठा । पानी बरसना अब बंद हो चुका था, पर आकाश की छाती पर उग काजल के दीर्घाकार पहाड़ों को दृष्टिगत रखते हुए निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता था कि आखिर कब तक नहीं बरसेगा । सनसना कर बहती बयार और रात्रि का भयावह सन्नाटा ।

पंकिल धरा पर भारी कदमों से ही वे दोनों चल पा रहे थे । ठग-ठग से मौन !

चलते चलते क्षण भर को आशुतोष ठिठका । एक बार सिर पीछे घुमा कर कंचन को देखने का प्रयत्न किया और कहा 'इस अपराध बोध से जलता रहूँगा, कंचन ! संभव हो तो क्षमा कर देना मुझे । दंड यदि दिया चाहो तो भी कभी उफ न करूँगा ।

प्रत्युत्तर मे कचन इस वार भी मौन ही साधे रही। फिर राह-भर दोनो म से कोई कुछ नही बोला। बोलने की आवश्यकता भी नही थी। यदि बोलते भी तो उत्तरो को तलाश कहाँ करते ! उस खँडहर के अधटूटी छत वाले बरामदे के अधकार म पक्षियो के पखो की फडफडाहट तमाम उत्तरो को निगल चुकी थी।

गाव के सीवाने पर स्थित मदिर म आशुतोष और कचन की प्रतीक्षा करते हुए मेरा मन अनक कुशकाओ से घिरा था। बार बार बाबा विश्व-नाथ के चरणो मे माथा नवाते हुए मैंने बार-बार प्रार्थना की "हे भोले-नाथ ! मेरी सखी सकुशल लौट आये !"

मेले म बार बार खोजने पर भी कचन से जब भेंट नही हुई तो हम बडे परेशान हुए। साथ ही घबराहट भी कुछ कम नही हुई। मैं और आशुतोष दोनो ही इस निर्णय पर पहुँचे कि हो सकता है, हम से रूठ कर वह गाव की ओर चल दी हो। एकमत से हम दोनो गाव की पगडडी पर ही तेजी से लपके।

सोचा था कि कचन अभी अधिक दूर नही पहुँची होगी और अधराह मे ही हम उसे पा लेंगे। पर जैसे-जैसे हम आगे बढते रहे, वैस वस मेरे मन म कुशकाओ की सृष्टि होने लगी। बार-बार मैं स्वय को ही कोसने लगी कि उस चिढाने खिझाने की मेरी आदत छूटनी क्यो नही ! इसी प्रकार चलते चलते गाव के सीवाने तक जब पहुँच गये तो मेरा माथा ठनका। मदिर म पुजारी बाबा से पूछा ताछा और नकारात्मक उत्तर पाने पर आशुतोष की घबराहट की भी सीमा न रही। कुछ सूझ नही रहा था कि अब क्या करें ! आखिरकार मेरा यह सुझाव आशुतोष ने स्वीकार लिया कि मैं तो मदिर मे ही रुक कर प्रतीक्षा करूँ और वह मेले वाले स्थल की ओर लौटता हुआ फिर से कचन की तलाश कर। इसी निर्णय के आधार पर आशुतोष बरसते पानी मे ही रवाना हो गया था।

मैं पहले तो वृद्ध पुजारी से इधर उधर की चर्चा करती रही पर उनके वीतराग स्वभाव, पोपले मुख पर अबोध शिशु की-सी भावाभिव्यक्ति का आकर्षण भी मुझे देर तक बाध नही पाया और मैं उदास

हावर बढ रही। तिस पर यह दुश्चिन्ता भी घुन की तरह भीतर-ही-भीतर खाय जा रही थी कि चाची, चाचाजी परेशान हो रहे होंगे। हो सकता है, दो चार जनों को तलाश के लिए भिजवा भी दिया हो उन्होंने। रात बेशक ज्यादा नहीं हुई थी, पर गाँव शहर तो नहीं होता कि आधी रात तक सड़कें जगर मगर करती रहें।

और फिर प्रतीक्षा की वे घड़ियाँ भी आ खड़ी हुईं जब एक एक पल बिताना दूभर हो गया। शकाओं के घेरे सख्त होते चले गये। इतने सख्त कि घुटन की सी अनुभूति होने लगी और मेरी रुलाई फूट आयी।

तभी मार्ग पर मेरी निगाह पड़ी तो पाया कि आशुतोष भैया के पीछे पीछे सिर झुकाये कचन चली आ रही है।

मेरे प्राण मानो लौट आये। दीर्घ निश्वास के साथ ही मेरे मुख पर निश्चिन्तता की मुसकान थिरक आयी।

मंदिर के आँगन में पहुँच आशुतोष सीधा उस ओर मुड़ गया जिधर पीपल के नीचे उसकी जीप-कार खड़ी थी और कचन दौड़ कर मुझ तक आयी और ऐसे लिपट गयी जैसे मेले में माँ से बिछुड़ी बच्ची अकस्मात उसे देख ले और लिपट जाये। उसने मेरे वक्ष से माथा सटा लिया और कुछ इस तरह कई दीर्घ निश्वास छोड़े मानो रोम-रोम में राहत अनुभव कर रही हो। मैंने उसका चेहरा अपनी ओर घुमाया। सायेबान में जल रही लालटेन की मद्धिम रोशनी में देखा कि उसकी आखें खूब फूली फूली सी हो रही हैं। सोचा मेले में भटक जाने पर खुद को असहाय मान रोती रही होगी—और क्या!

तब मुझे क्या पता था कि वह किस रूप में भटकी है! जो अनुमान मैंने तब लगाया था वह सहज ही कहा जा सकता है। कुछ और कल्पना करने की सूक्ष्म दृष्टि तब कहाँ थी?

'कहाँ खो गयी थी रे?' मैंने कोमल स्वर में पूछा।

कचन कुछ बोली नहीं। मैंने देखा कि दो बूंद आसू पलकों की कोरों से उभर कर उसके गालों पर लुढक आये हैं।

मीठी झिड़की देते हुए मैंने कहा, 'न न! अब किस बात का रोना? थोड़ी ही देर में घर पहुँच जायेंगे।

सचमुच वह तत्काल ही चुप हो रही। आसू पोछते हुए मैंने उसे स्वयं से अलग किया। अनुताप जीप स्टार्ट कर चुका था। पुजारी बाबा को अभिवादन करते हुए हमने भी विदा ली और जीप में सवार हो कुछ ही देर बाद घर पहुँच गये।

यत्र तत्र लगे ध्वनि विस्तारकों पर शायद कोई सूचना प्रसारित की जा रही थी। ठीक से सुन नही पायी। किंतु उनमें से उभरते तीखे स्वरों से मेरे विचारों की शृंखला भंग हो गयी। प्लेटफार्म के कोलाहल में भी बढोत्तरी हुई थी। पूछने पर पता चला कि जिस ट्रेन से कंचन को आना था उसका अभी कही कोई अता पता नही और मुझे फिलहाल कंचन के अतिरिक्त और किसी में कोई रुचि नही रह गयी थी। मैं सिर्फ उसी के विषय में सोचना चाहती थी। उन व्यतीत क्षणों को वर्तमान में नये सिरे से जीना चाहती थी। दो अंतरंग मित्रों के बीच किसी तीसरे का दखल क्या हो ? वह तो असह्य स्थिति होती है।

आज इस समय, जब मैं कंचन की कथा को लिपिबद्ध करने बैठी हूँ, तब भी अतीत के वे क्षण एक एक कर मेरे दृष्टि-पटल पर तैरते चले आ रहे हैं। जिस पेड के तले कुरसी बिछाये मैं बैठी लिख रही हूँ—वह कदम्ब है। भगवान श्रीकृष्ण की लोकरंजक लीलाओं का प्रमुखतम द्रष्टा ! इसी वृक्ष के नीचे मैंने बडे आग्रह और चाव से झूला टँगवाया है। लॉन के जिस भाग मे बैठी लिख रही हूँ, उसके पूर्वी सीमांत पर कचनार खडा है। उसी की बगल में सुशोभित है हरसिंगार। साझ बीते जब आकाश से क्रमश उतरता हुआ अंधकार धीरे धीरे गहरा होने लगता है, तब इस पर खिल आयी असंख्य पुष्प राशि मानो अभय प्रदान करती हो। अँधेरे के शक्तिशाली साम्राज्य से लोहा लेते हुए भगवान शंकर के ये प्रिय पुष्प भोर होते हो मटमैली धरती पर चादर-सी बिछा देते हैं। कदम्ब की पुष्प मखुरियाँ तो अब कई दिन बीते चुक चुकी हैं। हरे रंग की कुछ गेंदें सी ही लटकती शेष रह गयी हैं जिन पर चिडिया जब तब अपनी चोंचें गडाती रहती हैं।

हरसिंगार इन दिनों लेकिन खूब महक रहा है। लॉन के पूर्वी सीमांत

लिए भी तो प्राकृतिक संदर्भों में गहराई से रचना-बसना पड़ता है। इंगितार्थ की भाषा को ही पहले समझना होगा। इस समझ के अभाव में मानवीय ध्वनियाँ भी अपनी अर्थवत्ता खो बैठती हैं। और यदि तथा-कथित अर्थ निकाल भी लिये जायें तो वे अनर्थ की ही सृष्टि करते हैं। मैं अपनी बात को ठीक से समझा नहीं पा रही माधवी पर मेरे अनुभूति-जगत में यह सत्य अपनी सम्पूर्ण आभा के साथ आकार ग्रहण कर चुका है।"

कंचन के समूचे कथन का क्या अभिप्राय मैंने लिया कह नहीं सकती। अपनी अक्षमता को अस्वीकार करूँगी। सच बात तो यह है कि तब मैं ठीक से कुछ भी न समझ पायी थी। इतनी गहराई में उतरने का प्रयत्न कभी किया ही नहीं। इसकी आवश्यकता भी अनुभव नहीं की। फिर भी कंचन के प्रति करुणामिश्रित ईर्ष्या अवश्य हुई थी। मन ही-मन कहा था कि जितनी गहराई से वह सोच लेती है, मैं क्या नहीं सोच पाती?

लेकिन यह प्रसंग तो बाद का है। काफी बाद का। तब का, जब मेरा विवाह हो चुका था और कंचन ने गृहस्थाश्रम में पदार्पण करने के प्रस्ताव को एक लंबे अरसे तक ठुकराने के बाद कमल को जीवन-साथी के रूप में कुछ समय पूर्व स्वीकारा था। न सिर्फ इतना, बल्कि और भी बहुत कुछ घटित हो चुका था और वह मानसिक तनावों के विशाल आवर्त्तों में डूब-उतरा रही थी। और उन समस्त घटनाओं का, मानसिक तनावों का केन्द्र बिंदु था—कमल का पलायन, कंचन के प्रति वितृष्णा। इसीलिए तब वह विवाहिता होते हुए भी परित्यक्ता सी नारकीय यंत्रणाएँ झेल रही थी। यह 'नारकीय' विशेषण निस्सन्देह मेरी ही देन है। कंचन ने कदाचित ऐसा कभी नहीं माना। जेहि विधि राखे राम गुसाई—कदाचित इसी बलवती आस्था और विश्वास के चलते ही शारीरिक दौर्बल्य के बावजूद उसकी आकृति की तेजस्विता दिनानुदिन द्विगुणित होती रही।

तब वह मायके में थी और पत्र लिखकर मुझे भी आने का आग्रह किया था। उसका मन रखने के लिए ही मेरा वहां जा पाना संभव हुआ था। वरना दिल्ली सरीखे महानगर की व्यस्त जीवन-पद्धति में क...

अवकाश कहा था ? मा को, चाची का मुझसे हमेशा यही शिकायत रही है कि मैं उ ह बिलकुल भूल गयी हूँ।

मैन अभी बताया था न कि य समस्त प्रसग बाद के है। इ ह बाद म कहना ही ठीक होगा। कथा का सूत्र जहा से टूटा था, वही से आरभ किया जाना उचित है। राजापुर क आस-पास के प्राकृतिक आचल म छिपे खँडहर के उस अधटूटी छत वाले बरामदे मे व्यतीत हुए कचन क जीवन के कुछ क्षण जस अभी कल की बात हो। उस दिन कडक के साथ जो बिजली आसमान स गिरी थी उसकी स्मृति आज भी उस भूभाग म अवश्य सुरक्षित होगी जिसका सवस्व जला कर उसने राख मे परिवर्तित कर दिया था। यह कथाक्रम भी वम वही भग हुआ था।

मदिर के सहन से जीप पर सवार हो जब हम लोग घर की ओर रवाना हुए तो राह भर उन दोनो म से कोई कुछ न बोला। मैं चाहती थी कि सदव की तरह हँसी-खुशी का वातावरण बने। पर कचन को नही बोलना था और न वह बोली। आशुतोष भी हाथ भीचे स्टेयरिंग को सख्ती से जकडे बिलकुल चुप्पी साधे बठा था। मुझे कुछ समझ मे नही आ रहा था कि अकस्मात यह सब क्या होने लगा है! अनुमान लगाना चाहा भी तो मरी पहुँच बस यही तक सभव हुई कि कचन अभी तक आक्रोश म है। इस बात का आक्रोश कि हम लोग उसे वही मेले मे भटकता हुआ छोड कर चल आय। यह सब सोच कर मैन भी चुप्पी साध ली। उसके आक्रोश के मूल म दोष मरा भी हो सकता है पर सिफ इतना कि उसे खिझाने का काय मरे ही द्वारा सम्पन्न हुआ था। इसस परे म कहाँ दोषी ठहरती हूँ? और जितना दोष मैंन किया उतना दड भी तो भुगत ही चुकी हूँ। अब नहा बोलती तो न बोल। मरी बला से!

सामन जीप की हैड-लाइट म वर्षा से भीगा मार्ग चमकता और पीछे अँधेरे म सरकता चला गया।

घर पहुँच कर पाया कि चाची और चाचा जी दोनो चितित थ और खोज के लिए किसी को भेजन ही वाल थे। घटना को जिस रूप म मैंन देखा और समझा था, उसकी जानकारी सविस्तार द डाली। व निश्चित हुए। आशुतोष वह सब सुनन क लिए रुका नही। सीधा अपन कमरे म

चला गया। खाना भी उसने वही खाया। तब भी मेरा अनुमान सिर्फ इतना ही और आगे बढ पाया कि सभव है, आशुतोष ने ही कचन को डाट दिया हो। यह अस्वाभाविक भी नही था। सिर्फ उसी के कारण ही तो हमे इस तरह परेशान होना पडा था। कचन के बताये बिना मैं यदि उसी समय वास्तविकता का आभास पा लेती तो ठीक होता। अपने हर सभव प्रयत्न से म उसे उन यत्रणाओ से शायद बचा लेती।

कचन से वास्तविकता जान लेने के बाद जब जब इस घटना का स्मरण किया है, तब तब स्वय पर ही क्रोध आया है। ओरी बडबोली माधवी ! तुझे उसी समय सोचना चाहिए था कि ऐसी छोटी मोटी प्यार-भरी डाट पर तो कचन कभी नाराज हुआ करती ! और यदि आशुतोष उसे डाट दे तब तो बिलकुल भी नही। अवश्य ही कोई गभीर बात होगी।

किंतु किसी गभीर बात को समझ लेने की गभीरता तब तक मुझ म कहा आ पायी थी ? या तो वैसा गाभीर्य आज भी नही जुटा पायी, फिर भी स्थितियो को कुछ तो समझने लगी हूँ।

उस रात मेले से लौट कर कचन की चुप्पी वाली बात को मैंने बिलकुल विस्मृत कर दिया। स्मृति यदि थी भी तो मात्र उस आनदोल्लास की जिसे मेले म दोनो हाथो बटोरा था।

नीद की गोद म दुबक जाने से पहले मैंने पूछा, "कल किधर घूमने चलेंगे कचन ?"

"कही भी नही।"—सीधा सपाट उत्तर। लेकिन चाह कर भी उसम अपने प्रति कचन की उपेक्षा का भाव न तलाश पायी। अस्वीकृति का कारण जान लेने क उद्देश्य से फिर प्रश्न किया।

"क्यों ?"

"कही जाने की इच्छा नहीं।

"कल तक तो हो ही जायगी। उसी पुराने तालाब पर पिकनिक मनाने चलेंगे जहाँ पिछली बार गये थे। आस-पास फैली झाडियों मे घूम कर कितना आनद मिला था ! तू ही तो कह रही थी कि एक बार फिर वहाँ जायेंगे।"

"मैंने कहा न माधवी कि मेरी कहीं जाने की इच्छा नहीं।"

"आखिर कोई कारण भी तो होगा !"

"कारण कुछ भी नही । बस, यो ही।"

"और अगर मैं ले चलने की जिद करू ? सौगध दे दू !'

'बस माधवी ! अब चुप कर जा। तुझे मेरी सौगध ! कही चलने का आग्रह मत करना। मेरा जी अच्छा नही लग रहा।"

'तो सीधी तरह क्यो नही कहती ! तू नही चल पायगी तो फिर मैं भी नही जाऊँगी। पर एकाएक तुझे हुआ क्या है ? अच्छी भली तो थी !"

"पता नही, कैसा कैसा लग रहा है ! सिर तो बुरी तरह चकरा रहा है।

'चाची को जगाऊँ ?"

"न !"

'तो फिर क्या करूँ ? कुछ बता भी !'

'तुझे कुछ करने को कहा किसने है ? बस, चुपचाप सो जा ! मैं भी सो रहूँगी तो तबीयत ठीक हो जायगी।

मेरी आख तो जाने कब की झपक रही थी। तय था कि बिस्तर पर लेटते ही घोडे बेचकर सो जाऊँगी और सुबह बार-बार झिझाडने पर भी मेरी नीद खुलेगी नही। पर बातें करने का चस्का कुछ ऐसा था कि उसके बिना चैन नही पडता था। कचन ने जो कहा था उससे मुझे लगा कि वह भी शायद सोना चाहती है।

मेरे स्वभाव के नितात विरुद्ध उस दिन कदाचित जीवन मे प्रथम बार अधरात्रि मे ही मेरी नीद टूट गयी। बहुत धीमे स्वर मे फूट-फूट कर रोने की आवाज कक्ष के वातावरण को अत्यत करुण बना रही थी। एकाएक कुछ निश्चय न कर सकी कि यहा रोने वाला कौन हो सकता है ? कचन के बिस्तर की ओर ताका तो पाया कि औधे मुह पडी वही सिसक रही है। तकिए का एक छोर आसुओ से तर है।

लगा कि मेरी नीद खुल जाने का आभास उसे हो चुका है। उसकी देह मे हरकत हुई। तकिए से ही आखें रगड कर उसने शायद स्वस्थ होने का प्रयत्न किया। मैं उठकर उसके पास पहुँची। बालो मे उँगलियां फिराते हुए पूछा, तू रो क्यो रही है ?

'नहो, रो कहा रही हूँ !"

'नीद नही आती ?"

'ऊ हूँ ! सिर मे वहुत ज्यादा दद है।'

अच्छा, चल ! मैं सहलाती हूँ। तू साने की कोशिश कर।" और मैं सिरहान बठी-बठी उसका सिर सहलान लगी।

उस क्षण को याद करती हूँ तो लगता है कि तब अतमन से कचन भी शायद यही चाहती रही हो कि उसे गहरी नीद आ जाये। पीडा के लिए नीद स बढ कर दूसरी कोई औषधि नहो। अपन अक मे समेट कर यह व्यक्ति को उस लोक म पहुँचा दती है, जहा मुक्ति है।

जाने कब तक मैं उसे सहलाती रही और फिर स्वय भी जाने कब वही लुढक गयी।

सुबह उठन पर पाया कि वह अपेक्षाकृत स्वस्थ है। या, वदन अब भी थका थका सा लग रहा था। उसकी आर दख कर मैं मुसकरायी।

"अब जी कैसा ह ?"

'कुछ ता ठीक ही लग रहा है। पर ।'

'पर क्या ?'

'माधवी मैं आज ही वापस जाना चाहती हूँ।"

'एकाएक यह निणय ?'

'हा, यहा अब मन विलकुल नही लग रहा। पता नही क्यो !"

' किंतु या अचानक चल देन की बात पर कोइ क्या कहगा, यह भी सोचा है ?"

"तब ?'

"कुछ भी हो चाची चाचा जी से अनुमति तो लेनी ही होगी।'

तू ही कोइ रास्ता निकाल, माधवी। मरा यहा ठहरन का अब बिलकुल भी मन नही। लगता है कि भयानक रूप से बीमार पड़ूगी।"

छि ! वीमार पडेंग तेरे दुश्मन। अभी तुरत तो नहो, पर मैं कोई बहाना साचती हूँ कि शाम तक यहा स रवाना हो सकें। तब तक गणेश भी फाम से लौट आयगा।'

गणेश का काई भाई वद वही चाचा जी न ही दूसर फाम पर

करता था। गणेश जब भी यहाँ आता तो उससे मिलने चला जाता।

कंचन बोली, 'तू अब कुछ भी कर माधवी, पर मैं आज ही घर जरूर पहुँचना चाहती हूँ।'

मुझे यही लगा कि कल मेले में भटक जाना ही उसके मन मस्तिष्क पर हावी है। वह शायद बुरी तरह भयभीत हो गयी है। उसके स्थान पर यदि मैं बिलकुल अकेली पड़ जाती तो निश्चित ही मेरी भी वही हालत होती।

'पक्का वायदा करती हूँ बाबा कि शाम तक हम जरूर चल देंगे,' कह कर मैंने स्वीकृति दे दी। इसके साथ ही इतना और जोड़ दिया, 'अब एक बार जरा खुल कर मुसकरा तो दो।'

मुसकराने का प्रयत्न उसने किया था, पर शायद मेरा मन रखने के लिए ही क्योंकि उस प्रयत्न की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पीड़ा की ढेरों अव्यक्त रेखाएँ उसकी आकृति पर फैल गयीं।

नाश्ते पर हम सभी साथ थे। तभी मैंने शाम तक वहाँ से लौट चलने की बात उठायी थी। आशुतोष ने चौंक कर पहले मेरी ओर दृष्टिपात किया फिर उसका अगला पड़ाव बनी कंचन। दृष्टि वहाँ ठहर नहीं पायी, झुक कर रह गयी। पूरे नाश्ते के दौरान उसने सिर उठाकर देखा भी नहीं किसी को।

दो चार दिन और रुकने की बात उठी अवश्य थी, पर मेरे हठ और सशक्त बहाने के आगे किसी की एक न चली।

आशुतोष नाश्ते के बाद ही चाचा जी के साथ चला गया। दोपहर के खाने पर चाचीजी ने पूछा 'फिर कब आओगे तुम लोग?'

मैंने अपनी उसी अभ्यासगत चंचलता से छूटते ही उत्तर दिया 'कभी नहीं।'

चाची तनिक भी हतप्रभ नहीं हुईं। मेरे स्वभाव से उनका खूब गहरा परिचय था। बल्कि वे खुल कर हँसीं। कंचन की ओर गहरी नजर से ताकते हुए उन्होंने उसी से पूछ लिया, 'माधवी ठीक कहती है कंचन?'

कंचन ने उत्तर न देकर सिर झुका लिया। चाचीजी ने हाथ बढ़ा कर

साथ कालज जात। पढाई लिखाई करते। शि ा सस्थान की समस्त गतिविधिया म बढ चढकर भाग लेते। महाविद्यालय के प्रयेक कायक्रम मे किसी न किसी रूप म हमारी उपस्थिति लगभग निश्चित थी—किसा नाटक का मचन हो अथवा काई वाद विवाद प्रतियोगिता, लोकनत्य की प्रस्तुति हो या नत्य नाटिका अथवा ऑपेरा गायन वादन का कायक्रम हो या फिर का य-पाठ की प्रतियोगिता।

एसे कायक्रमा म ही मेरा मन ज्यादा रमता। पढाई लिखाई म तो बस ठीक ठीक सी ही रही हूँ। इस बात पर मैंने अकसर विचार किया है कि विद्यार्थी जीवन म मुझे वे तमाम मच यदि उपलब्ध न हुए होते तो मेरा व्यक्तित्व कितना अधिक अपूण रह जाता। परिपूणता का दावा कभी काई नही कर पाया। कर भी नही पायगा। परिपूणता एक आदश स्थिति है। वह जीवन का उद्देश्य है। उपलब्ध वह नही हो सकती। लेकिन अपूणता का श्रेणी विभाजन तो किया ही जा सकता है। विद्यालया, महाविद्यालया म ऐसे साहित्यिक सास्कृतिक आदि मच उपलब्ध कराना व्यक्तित्व म निहित अपूणता के विभि न स्तरा को बीधने का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। किसी एक मच पर भी स्वय को अभि यक्त कर छात्र अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर सजन की महान प्रक्रिया स जुड जाता है अपने का कटा हुआ अनुभव नही करता। स्वय के प्रति तुच्छता की अनुभूतिया से वह बचा रहता है। उसकी अस्मिता न सिफ अखड रहती है अपितु परिपूणता की ओर भी उ मुख हाती है।

पर एसे कितने विद्यालय हैं इस दश मे ? जो है वे जन-साधारण की पहुँच स परे हैं। शिक्षा म सुधारमूलक क्राति की बात जब उठती है ता चद और सिद्धात परस्पर टकराने लगते हैं लकिन सिद्धातो की इस लडाई म उनक क्रिया वयन की बात बिलकुल दब जाती है या दबा दी जाती है। परिणाम ?

वह ता किसी से छिपा नही।

किन्तु हम विद्यालय म ही एसे वातावरण म रहन का सौभाग्य प्राप्त हुआ और महाविद्यालय म पहुँच कर भी वसी ही स्थितियाँ मिली। समय समय पर आयाजित हाने वाले विभि न कायक्रमा म हम दाना ही भाग

रेत रह, लेकिन एक अंतर दोनों में था। वह यह कि मैं मंच पर प्रस्तुत रहना चाहती थी पर कंचन को सदैव पृष्ठभूमि में ही रहना ज्यादा भाता रहा। मंच पर आने का अवसर जब जब आया तब तब वह विचलित हुई। या, उसका नेपथ्य में रह कर विशिष्ट संवाद बोलना आज भी श्रवणों में अनहद नाद सा गुंजायमान होता है। संभव है उसके अंतर्मुख स्वभाव की ही यह प्रतिक्रिया रही हो जिस पर उसका कोई वश नहीं था।

मेरी प्रवृत्ति उसके ठीक विपरीत रही। मुझे मंच ही अपेक्षित था। नेपथ्य में पड़े रहना मेरे वश का रोग नहीं। मेरे प्राण मानो नाट्य तारों में ही बसते। अनेक नाटकीय स्थितियों को मैंने मंच पर अभिव्यक्ति दी है पर जीवन में शायद ही किसी वैसी स्थिति को भोगा हो। वह सब कंचन को सहना पड़ा। कितने नाटकीय मोड़ उसके जीवन में आये! कथानक का जैसा संघर्ष नाटकों में रूपायित किया जाता है वैसा उसने जीवन में स्वयं किया। मैं तो जैसे अनुकृति भर प्रस्तुत करती रही हूँ। मेरी लेखनी द्वारा उसकी यह कथा भी तो मेरा मौलिक सृजन नहीं कंचन के जीवन की अनुकृति मात्र है।

उस दिन रेलवे प्लेटफार्म की खाली बेंच पर बैठे बैठे कंचन की प्रतीक्षा को समर्पित विह्वल क्षणों में कॉलेज में किये गये एक मंचन की स्मृति फिर ताज़ा हो आयी थी। प्रमुख स्त्री पात्र की भूमिका मुझे ही निभानी थी। नाटककार के नाम की स्मृति तो अब बिलकुल नहीं रही हाँ, उसके कथानक को कभी विस्मृत नहीं कर पाऊँगी। उसमें एक ऐसी युवती के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण किया गया था जो नैतिकता अनैतिकता पाप पुण्य, शुचि अशुचि के पाटों में निरंतर पिस रही थी। किशोर वय में एक युवक उसके जीवन में अनधिकार ही चला आया और उसे पाप की अनुभूति करा गया। नायिका के अंतर्मन में स्थापित पुण्य की प्रतिमा खंड खंड हो गयी। और वह पाप-बोध उसे सर्प दंश सरीखा आजीवन डँसता रहा। उसे पुरुष मात्र से वितृष्णा हो गयी। विवाह के नाम पर वह कतराने लगी। चतुर्दिक दबाव के फलस्वरूप उसने विवाह के लिए हामी भर दी। इस निमित्त स्वयं को भी मानसिक रूप से तैयार करने का प्रयत्न किया। और पति की प्रथम झलक पाकर उसे ऐसा भी लगने लगा कि अब अतीत के उस ।

बाध से वह मुक्ति पा लगी। वितृष्णा के बादल छँट जायेंग।

प्रत्यक्ष देखन पर जसा लगता है, क्या यह अनिवाय है कि वसा ही हो? यदि यही नियम होता ता सष्टि की पहेली जाने कब की मुलझ गयी होती। एसा नही है इसीलिए यह माया है। इसी माया का साक्षात्कार नायिका को हुआ। प्रकृति की नही पुरुष की माया का!

नायिका ने साचा था कि जब इस सुपुरुष न अपने मन की समस्त कुठाएँ उस पर व्यक्त कर दी है तो उसका भी यह दायित्व हो आता है कि अपने भीतर की गाठो को खाल दे।

उसन वही किया।

फिर वही पाप बोध!

अभी कुछ क्षण पूव नायक न दाशनिक विचार व्यक्त किय थ— पाप का स्पश मन तक नही पहुँचना चाहिए। यह शरीर का गुण है। शरीर नश्वर है। आत्मा का कलुष।'

तब उसने कदाचित अपन पापो का बयान कर नायिका की दष्टि म ऊँचा उठ अपना ही महत्व प्रतिपादित करना चाहा। किंतु अनिच्छापूवक ही जा कलक कथा नायिका सविता क साथ जुड गयी थी, उसके आभास मात्र से वह चिहुँक उठा। यही चिहुँकना उसक पलायन म परिणत हुआ। और नायिका शून्य म दष्टि गडाय मच पर अकेली बठी रह गयी। वाता वरण म तब अनक प्रश्नचिह्नो क चित्र उभर आय।

और नेपथ्य से कचन का चमत्कार कर देन वाला महादेवी वमा का काव्य पाठ—

' छिपेगी प्राणा म बन प्याम।
घुलगी आखा मे हो राग।
कहा फिर ले जाऊँ ह देव!
तुम्हारे उपहारा की याद?

यहा विष दता है अमरत्व
जहा पीडा है प्यारी मौत

जहाँ ज्वाला बनती नवनीत
मृत्यु बन जाती नवजीवन !

करुण नैनों का संचित मौन
सुनाता कुछ अतीत की बात
प्रतीक्षा बन जाती अंजन
वही मिलता नीरव भाषण।"

नाटक के समापन पर मैं स्वयं चमत्कृत हो आयी थी। जब तक अभिनय चलता रहा तब तक मैं सुध बुध खोये रही। माधवी तन मर चुकी थी। उसके शरीर में तब संचिता की आत्मा समा गयी थी। मंच पर समाप्ति-सूचक अंधकार हो जाने के भी काफी देर बाद माधवी फिर लौट पायी। तनिक स्वस्थ्य होते ही दृष्टि ऊपर उठायी तो सामने अँग्रेजी विषय के प्रवक्ता बनर्जी बाबू खड़े थे। पढ़ाया तो करते थे अँग्रेजी, पर आम बात चीत में हिन्दी मिश्रित बाग्ला ही प्रयोग किया करते। बोले खूब भालो ई होए छे तोमार अभिनय मा ! कैमनी कोरे ? बोलून तो। बोत आच्छा, अभिनय कैसा है तुम ! कैसे बोलो तो !"

उत्तर में मैंने सिर्फ धन्यवाद किया था। उनके समक्ष सिर उठा कर बात करना कभी संभव नहीं हुआ। कारण था। अभी तो सिर्फ नाटक के घटनाक्रम पर ही टिप्पणी करने का मन है।

नाटक क्या होता है ? जीवन की अनुकृति ही तो ! कृति का संबंध जीवन से है। कृति की ही अनुकृति होती है। पर क्या अनुकृति भी कृति बन पाती है कभी ? मेरा विचार है—हाँ बन पाती है। दोनों में अभेद है। तभी तो नाटक के रूप में वह अनुकृति कंचन का जीवन बन कर व्यक्त हुई। नायिका संचिता के मानसिक द्वन्द्व को उसने भी भोगा। तब मैं क्या जानती थी कि मेरे लिए जो अभिनय है वही कंचन के जीवन का यथार्थ होगा !

अनेक प्रश्न सामने खड़े हैं। प्रश्नों का एक भयावह जंगल है जिसमें भटक जाने पर राह नहीं मिलती।

मूल्यांकन की दोहरी पद्धति ! पुरुष के लिए कसौटी और, नारी के...

लिए मापदड दूसरे। पुरुष की स्वीकारोक्ति उसे महामानव की महिमा से मडित करती है और नारी की स्वीकारोक्ति उसे जड पत्थर बना डालती है। स्वीकारोक्ति भी किस बात की ? स्वय पर हुए अत्याचार की ! अपने प्रति हुए दुराचरण की ! अन्याय की !

बनर्जी बाबू ने कहा था अभिनयता भालो इ होए छे मा !'

अभिनय ज्ञान ! उनकी कृपा से मैं प्रशसनीया हो गयी। पर जिसके लिए यही अभिनय वास्तविकता बन गया उसे क्या मिला ? उपेक्षा ! अपमान !

ठीक तो है। कला के साथ मडन कर वीभत्स भी आनन्द का हेतु बनता है। नाटक पर आकर अग्नि अनुभूतियां ही अलौकिक हो उठती हैं। उसी अलौकिकता का जब लोक पर चरितार्थ होते देखते हैं तो जाने कैसा लगता है ? कुछ कहा नहीं जाता। यह रहस्य क्या मेरे सुलझाए सुलझ पायेगा ?

आशुतोष के क्षणिक व्यामोह का परिचय तो बरसों बाद मिला था। कुठित अह के प्रतिफलन—कमल का छलना और पलायन को भी बाद में ही जान पायी। इससे पहले घर से बाहर के परिवेश में जिस पुरुष को देखने समझने का अधिकाधिक अवसर मिल पाया, वे बनर्जी बाबू ही थे। अब तो वे अपनी देहलीला समाप्त कर स्वर्गवासी हुए। कक्षा से बाहर ना कभी कदा हम दोनों को मां सबोधन ही करते। स्कूल की और फिर इटर कॉलेज की सीढ़ियां लांघ कर जब हम महाविद्यालय के द्वार पर खडे हुए, तभी इन बनर्जी बाबू का परिचय मिला।

मैं जो आज लेखन की ओर प्रवृत्त हुई हूँ उसमें भी मूल प्रेरणा और प्रोत्साहन उन्हीं का है। वे हमें पोएट्री पढ़ाते, कथा और निबंध साहित्य पढ़ाते। सिर्फ अँग्रेज़ी में उन्हें कभी सतोष नहीं मिला। बांग्ला साहित्य का भी खूब अवगाहन किया था। रवीन्द्र पर वे अनुरक्त थे। शरत सदैव उनकी दुर्बलता बन रहे। हिन्दी ठीक से बोल नहीं पाते थे किंतु पढ़ कर अर्थ ग्रहण की क्षमता उनमें पर्याप्त थी। प्रसाद प्रेमचन्द बहुत कुछ उन्होंने पढ़ा था। एक दिन रवि ठाकुर की एक कविता का अँग्रेज़ी अनुवाद पढ़ा रहे थे। कविता का आदर्श वाचन करते हुए वे एसे तन्मय हुए कि उनके नयन कोर डबडबा आये। कहां तो उनके भीतर किसी अनिर्वचनीय

ानन्द की स्रोतस्विनी प्रवहमान थी ! ठीक इसी प्रकार तन्मय होकर ही व हम काव्य की रसानुभूति कराते रहे। काव्य उनके लिए विलास का साधन नहीं अपितु अध्यात्मानुभूति का सोपान था। सम्भवतः अपने अंतच क्षुओं से वे काव्य पुरुष का ही दर्शन करते होंगे। अन्यथा और भी तो अनेक हैं जो कविता पढ़ते पढ़ाते हैं। उनमें से कितने हैं जिन्हें बनर्जी बाबू जैसी तन्मयता की सिद्धि प्राप्त है ! काव्य पंक्तियों की व्याख्या करते हुए न जाने कितने लोकों का भ्रमण करा डालते। पीरियड कब ख़त्म हुआ, कुछ पता न चलता।

यह सिर्फ मेरी या कंचन की ही प्रतिक्रिया नहीं। हमारे सभी सहपाठी उनके प्रति लगभग ऐसी ही धारणा रखते थे। कोई एकाध दबी जबान से प्रवाद भी करता। किसी ने एक बार धीरे से कहा भी था, आप कंचन और माधवी को ही अधिक चाहते हैं !'

बनर्जी बाबू की आकृति पर प्रत्यक्ष रूप से कोई विकार नहीं आया। संभव है भीतर ही भीतर मर्माहत हुए हों। मर्म पर सुई सी चुभी हो। लेकिन कदाचित वे समझते थे कि ऐसा प्रश्न अस्वाभाविक नहीं। व्यक्ति मानस में ऐसे अनेक प्रश्न उभरा करते हैं। परिवार और समाज का चतुर्दिक वातावरण उस वातावरण में व्याप्त नैतिक मान्यताएँ और उनसे प्रभावित व्यक्ति मन ऐसे प्रश्नों को निरंतर तीक्ष्ण किया करता है। ऐसी जिज्ञासाएँ जब अबाध किशोर मन में उठें तो उनका समाधान होना ही चाहिए, अन्यथा इनके दूरगामी परिणाम जाने किस दिशा की ओर मुड़ जायें—इस सत्य से भी वे परिचित ही रहे होंगे। तभी तो कहने वाले की ओर कई क्षण तक निर्विकार भाव से ताकते रहे मानो प्रश्न की मूल भावना को जान लेना चाहते रहे हों। फिर सहसा उनके भीतर प्रकाश का अनन्त स्रोत नैनों में झिलमिलाने लगा। अधरों पर मन्द स्मित तैर आया। उस मुसकान की तुलना सिर्फ उस मुसकान से ही की जा सकती है जो हिंडोले में लेटे सोये हुए शिशु के अधरों पर कभी कभी सहसा उभर आती है।

प्रश्न के उत्तर में उन्होंने जो कहा, उसका मन्तव्य मैं तब ठीक से नहीं समझ पायी थी। कंचन भी नहीं समझी। अन्य भी समझ पाये थे ? क्या पता ? इतना ही लक्ष्य किया था कि कहने वाले की दृष्टि

वे सिर्फ मुसकराये और फिर छत की ओर घूरने लगे।

सेवा निवृत्त होकर वे बिलकुल वीतराग हो गये। काषाय धारण किये बिना ही संन्यासी। दैवयोग से मेरे विवाह के अवसर पर भी उनका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हुआ था। अकस्मात वे पुनः नगर में पधारे थे। आगमन की सूचना पाते ही उन्हें सादर लिवा लाया गया।

बचन की बात कहते कहते बनर्जी बाबू अनायास ही याद आ गये। लगता है यह प्रसंग भी अपभित था। संभवतः अपनी दिव्य दृष्टि से उन्होंने बचन की भीतरी हलचल का संधान पा लिया था। संभवतः उसके भविष्य का पूर्वाभास उन्हें तभी हो गया था। संभवतः उन्हें यही अभीष्ट रहा होगा कि बचन के मौन को शब्दमयी सृष्टि में परिणत करें।

इस समय भी मेरे अन्तरतम में श्रद्धानत हुआ कोई बार बार यह कह रहा है 'आपका आदेश तो मैंने शिरोधार्य किया है बनर्जी बाबू! आप ही के आशीर्वाद से बचन का चिर मौन उसी के जीवन की अनुकृति के रूप में गूंजेगा!'

बनर्जी बाबू इस भ्रमण के लिए चले गये और हम दोनों परीक्षा रूपी गौरीशंकर शिखर पर आरोहण की तैयारियों में जुट गये। विशेष रूप से अंतिम विषय में मुझे अत्यधिक चिंता थी। प्रथम श्रेणी यदि न मिली तो बड़ी किरकिरी होगी!

वे दिन पलकों में ही व्यतीत हुए। हम दोनों प्रसन्न थे। लग रहा था कि परचे अच्छे हो गये हैं।

परीक्षा की समाप्ति के बाद एक दिन जब शंकर की डायरी [illegible] और चुकी [illegible] पाया कि माँ मुझे पुकार रही है। कुछ अचरज सा हुआ। इस समय वे अक्सर नहीं बुलाया करती थीं।

[illegible] पर [illegible]। मुझे [illegible] बैठी थी। [illegible] पर एक पोटली रखी थी।

उन्होंने सिर उठाकर [illegible] मुझे देखा और कहा [illegible] आकर मेरे पास बैठ।

स्वाभाविक [illegible] सकुचित [illegible] गया। [illegible]

अपराध बन पड़ा है ! अन्यथा, मेरे प्रति उनकी स्वर भंगिमा कभी इतनी गुरु गंभीर नहीं हुआ करती थी।

पाव तनिक खिसकाकर उन्होंने मेरे लिए स्थान बना दिया। नींद की सुस्ती भगाने के लिए मैंने आखों को जरा मीचा और आशंकित सी चुपचाप बैठ गयी।

भूमिका-सी बांधते हुए वे बोलीं — "जरा ध्यान से मेरी बात सुन, माधवी! तेरी परीक्षाएं अब समाप्त हुई। अब तक कई बार यह बात उठाने की इच्छा मन में हो चुकी है, पर सोचा कि तू पढ़ना चाहती है, इस लिए पहले पढ़ ही लेने दिया। अब तू विवाह योग्य हो चुकी है। इस बात की ज्यादा उपेक्षा नहीं की जा सकती न! हर मां-बाप का यह कर्तव्य होता है कि उचित समय पर ही बेटी को ससुराल विदा करें। इस बीच तेरे पिता बराबर खोज-खबर रखते रहे हैं। अब, जब तेरी पढ़ाई लिखाई समाप्त हो चुकी है तो यह आवश्यक हो जाता है कि तेरे विवाह के संबंध में भी गहराई से सोचा जाय।"

इतना भर कह वे क्षण भर को मौन हुई। मैं सिर झुकाये ही सब कुछ सुनती रही। इस प्रकार के प्रसंगों के अवसर पर क्या कहना चाहिए इसका बोध और ऐसा चातुर्य मुझ में नहीं था।

मां ने दूसरे ही क्षण फिर कहना शुरू किया — "तेरे पिताजी ने कुछ रिश्तों का चयन किया है। रिश्तों के अतिरिक्त उन सबकी जानकारी भी उन्होंने जुटायी है..."

मेरे शरीर में एक सिहरन सी हुई। मां को लगा होगा जैसे मैं कोई प्रतिवाद करने जा रही हूं। कदाचित इसीलिए उन्हें कहना पड़ा, "यह अवसर सभी के जीवन में आता है, बिटिया! विवाह तो आखिर करना ही होगा। किये बिना काम चलता नहीं। यदि तुम्हारी कोई विशिष्ट रुचि इस संबंध में हो तो निस्संकोच कह डालना। हम उसकी उपेक्षा नहीं करेंगे। कोई भी पात्र तुम्हारी दृष्टि में हो, जिसके साथ दाम्पत्य सूत्र में बंधने का निर्णय तुमने मन ही मन लिया हो तो उसमें भी हम अप्रसन्न न होंगे। ऐसा अगर नहीं है तो जिन पात्रों का चुनाव हमने किया है, उन सबको देखभाल कर निर्णय ले लो। इनमें से भी यदि किसी पर मन न ठहरे तो फिर किसी

और की बात मानेंगे। हमने तुम पर कभी कोई अनावश्यक प्रतिबंध नहीं लगाया। इनमें से किसी रिश्ते के लिए तुम्हें बाध्य नहीं किया जायगा।'

इतना कह उन्होंने तिपाई पर पड़ी फाइल उठाकर मेरे हाथों में थमा दी। इसके बाद मैं सिर झुकाये चुपचाप उठी और अपने कमरे में चली गयी।

मुझे स्वयं में विचित्र परिवर्तनों की अनुभूति हो रही थी। लग रहा था कि मैं भारशून्य होकर हवा में स्थित हूँ। सीलिंग फैन को घूरते, दीवान पर लेटे लेटे भी काफी देर तक ऐसी ही मन स्थिति बनी रही। मां द्वारा दी गयी वह फाइल मेरे सिरहाने पड़ी थी पर उसे खोलकर एक नजर देख पाने का साहस मैं न जुटा पायी। एक अनोखी ही लज्जा की अनुभूति से मैं सकुचित हो रही थी। इससे पूर्व कभी ऐसी मन स्थिति का सामना कब किया था ! एक बार साहसपूर्वक प्रयत्न भी किया और फाइल सामने खींच ली लेकिन फिर बिना खोले उस पर भी सरका दिया। कुछ समझ नहीं पा रही थी कि क्या करूँ ! मां निर्णय के संबंध में पूछेंगी तो कुछ न कुछ उत्तर देना ही पड़ेगा। अभी तक अकेले कोई निर्णय कभी लिया नहीं था। ऐसा अवसर ही नहीं आया। कंचन मेरे किसी निर्णय के प्रत्येक क्षण की साक्षी रही है। सोचा उसी के पास चलना चाहिए।

मैं जब पहुँची तो वह लान में रखे गमलों को सींच रही थी। मुझे देख कर वह मुसकरायी।

मैं पास पहुँचकर गुमसुम सी खड़ी हो गयी। उसे आश्चर्य हुआ। ऐसा स्वभाव कभी रहा ही नहीं था मेरा।

'क्या बात है रे ? आज चुप सी क्या है ?'

'बस यों ही ! एक विशेष बात करने आयी हूँ तुझसे।'

'तो कह डाल जल्दी से। सोच विचार किस बात का ?'

'नहीं यहां कहने की बात नहीं है। कमरे में चलकर बैठते हैं। वहां सुविधा रहेगी।'

कंचन ने बड़ी गहरी दृष्टि से मुझे देखा। संभव है मेरे व्यवहार का यह परिवर्तन अप्रत्याशित गांभीर्य उसे विचलित बना गया हो। हाथ के

फ ग्रारे को धरती पर रखते हुए उसने आचल मे हाथ पोछे। कहा, 'आ चन। लेकिन ऐसी भी क्या बात है जो यहा नही कही जा सकती ?

"कुछ है तभी तो !"

कचन के साथ उसके कमर मे पहुँची तो मेरा स्वर एक सीमा तक अस्वाभाविक हो उठा था। बठने के बाद मैंने कचन पर दष्टिपात किया। उसके उत्सुक मौन की व्याकुलता का कम करते हुए मैने कहना शुरू किया, "लगता है, अब मेरा जीवन एक नये मोड पर आ खडा हुआ है। बहुत शीघ्र सब कुछ परिवर्तित हो जाने की स्थितिया तेजी से सक्रिय हो उठी है और मैं कुछ भी निणय नही ले पा रही। निणय लिये बिना कोई चारा भी नही। इसीलिए तुरत तेरे पास चली आयी हूँ ।"

कचन की उत्सुकता का कोई समाधान होता नजर नही आया। इस बार उसे कुछ झुमलाहट हुई।

'तू तो पहेली बुझा रही है। सब-कुछ साफ-साफ क्यो नही कहती ?"

'कहती हूँ बाबा ! सब-कुछ साफ साफ ही कहूगी। कहने के लिए ही तो आयी हूँ। बात कुछ ऐसी है कचन कि ।'

इससे आगे कुछ कहा नही गया। यानी जो कहना चाहती थी, उसे न कह पायी। इसीलिए बात को तनिक मोड दिया और कहा, ' एक बात पूछू, कचन ?"

'पूछ।'

मेरी चचलता लौट आयी। पूछा, "तूने कभी सोचा है कि जीवन-साथी कैसा होना चाहिए ? आखिर कभी तो तूने भी विवाह की कल्पना की होगी। बस, यही बात मैं जानना चाहती हूँ कि पति के रूप में कैसे पुरुष की कल्पना तेरे मन मे उभरती है ?'

'बस, यही पूछने आयी थी ?' कचन मानो रुष्ट हुई। फिर कहा, "ऐसे बेकार के प्रश्नो पर सिर खपाने का अवकाश मुझे नहीं।'

मैने पीछा नही छोडा। मनुहार करते हुए कहा, तू जिसे बेकार का प्रश्न कह रही है न, उसका उत्तर पाना मेरे लिए अनिवार्य है कचन ! तू नही जानती कि मैं कैसी मन स्थिति से गुजर रही हूँ !'

इस बार वह तनिक चिंतित नजर आयी। स्वर की कोमलता के साथ ही वह अपने कर्त्तव्य के प्रति भी सजग हो उठी, "पहली न बुलाकर सब कुछ स्पष्ट रूप से कह, तभी तो समय पाऊँगी।

वही तो बता रही हूँ। अभी कुछ समय पूर्व मा ने बुलाया था ।"

और मैंने मा के साथ हुए संपूर्ण वार्तालाप का अक्षरश उसे सुना दिया। उसकी आकृति पर बड़ा मधुर भाव उभरा। वह मुझसे लगभग लिपट ही गयी जैसे अपनी स्वीकृति और प्रसन्नता की घोषणा कर दी हो। मगन भाव से ही उसने कहा था मा ठीक ही तो कहती है। तुम्हें कोई आपत्ति है क्या ?

'आपत्ति यदि होती भी तो अब ही क्या होता ! आपत्ति की कोई संभावना उन्होंने छोड़ी भी नहीं। पर मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा। ये कुछ प्रभावित रिश्ते हैं जिन्हें मा पिताजी ने सुझाया है। निर्णय का दायित्व मुझ पर छोड़ दिया,' कहते हुए मैंने फाइल उसकी ओर सरका दी।

कंचन ने उसे खोलकर देखने का कोई उत्साह प्रदर्शित नहीं किया। इतना अवश्य कहा उन्होंने कोई भूल की है ? अपने जीवन के संबंध में कोई निर्णय तुम्हें स्वयं ही तो लेना होगा।

"मैं ठीक से कुछ सोच नहीं पा रही। तुम्हारी सहायता चाहती हूँ। जो भी निर्णय मेरा हो उसकी साक्षी तुम्हें बनाना चाहती हूँ।'

कंचन अनमनस्क हो आयी। कहीं दूर भटकते हुए उसके स्वरों की अनुगूंज कक्ष की दीवारों से टकराने लगी 'जिस विषय पर कभी कुछ सोचा ही नहीं, उस पर तुम्हें परामर्श भी क्या दूगी !

तो फिर ठीक है। मैं अकेले कोई निर्णय नहीं लूगी। अभी जाकर मा से कहे देती हूँ कि इन में से एक भी मेरे मनोनुकूल नहीं है।'

कंचन आहत हुई। मना लेने का-सा स्वर था उसका 'ठीक है तू कहती है तो अपनी रुचि का संकेत अवश्य कर दूगी। पर यह क्या आवश्यक है, वह तुम्हारे मनोनुकूल भी हो ? मैं भी तो भूल कर सकती हूँ।

भूल हो या न हो, पर तेरे परामर्श का मेरे लिए बहुत महत्त्व है। अकेले कोई निर्णय न पाना मेरे लिए संभव नहीं।

और इसके बाद हम दाना फाइल खाल कर बठ गय। कचन की निक टता के कारण मरा सकाच जाता रहा। अब लज्जा की पूव सगीत्री अनुभूति मुख नहीं हा रही थी। एक एक कर सभी चित्र हमन दख डाल। अपन अपन ढग स व सभी श्रष्ठ थे। किसी क प्रति अस्वीकृति का अभिप्राय यह ता नहीं हाता कि वह अच्छा नहीं। अच्छा हान पर भी कई बार किसी के साथ सामजस्य बठा पाना कठिन हा जाता ह। तिस पर यह प्रश्न था, विवाह का। सबध जाडन स पहले सब भला बुरा ठीक सोच विचार लेना था। अपने भल बुर का सही सही निरूपण यदि समय रहत न किया जाय ता आजीवन पश्चाताप करना पड सकता है। जीवन भर क लिए जो निणय लेना हा, उस तक पहुँचत पहुँचते मन कई बार सशक हो उठता है। मेरी भी एसी ही स्थिति थी। कचन न ही इस स्थिति म मुझे उबार लिया।

मन अभी कहा न कि एक एक करक सार चित्र हमने देख डाले और उनक सबध म उपलब्ध कराया गया विवरण भी पढ लिया। उन सब म से सिफ एक चित्र को देखकर मन म काई कामल भावना उभरी। घूम फिर कर दृष्टि वही अटक जाती। भीतर से जाने कौन रह रहकर साक्षी भरता कि बस यही तुम्हारा सबध तय हा सकता है। यही होगा। कही भटकने का प्रश्न ही नहीं उठता।

राजन!

उसके सबध मे जा जानकारियाँ लिखित रूप म जुटा दी गयी थी—मेरी सुविधा के लिए—उनके आधार पर ही मुझे इस नाम का प्रथम परिचय प्राप्त हुआ था। चित्र म व खूब सौम्य लग रह थ। साहित्य म एम० ए० करके भी व्यवसाय म जुट गय। एसा अवसर कम ही दखन म आता है कि काई व्यवसाय और साहित्य मे समान रुचि व्यक्त कर। पारिवारिक पृष्ठ-भूमि ता खर बहुत अच्छी थी ही, पर मर निमित्त उनका सबस बडा आकषण यही था कि व साहित्यिक और रचनात्मक गतिविधिया म सक्रिय यागदान करते ह। यही मैं चाहती भी थी। इस म परस्पर टकराव की सभावना नहीं रहगी—यह विचार भी मन म आया था।

राजन क उस चित्र का मैंन कचन की ओर सरका दिया। कहा

के मबध म तरा क्या निचार है ?

क चन तव अ य चित्रा को उचटती निगाह स दख दखकर रखती चली जा रही थी। अब राजन क चित्र को हाथ म लकर वह ध्यानपूर्वक उसे निरखन लगी। एक बार उसका समस्त विवरण पढा और एक बार फिर चित्र पर दृष्टि गडा दी। अ यन्त क्षीण स्मित रेखा उसके पतल अधरा पर खिचती चली गयी। अपनी आर स कुछ न कह उसन मुझसे ही प्रश्न किया, तरी क्या धारणा बनी है ?

मच्ची कहूँ कचन मुझ लगता है कि य मर मनोनुकूल रहग।"

क चन न चित्र मर हाथा म थमात हुए कहा 'हाँ माधवी मेरा भी यही विचार बना है। यहा सबध तय हाना हर प्रकार स तेर अनुरूप हागा। मेरा मन कहता है कि तू यहाँ बहुत बहुत सुखी रहगी।

मन जब किसी बात की साक्षी भर द ता विकल्प की अपेक्षा नही रहती। मक ल्पात्मक अनुभूति म परिचालित हो मैंन कचन स पूछा, ता माँ का स्वीकृति द द ?

हूँ ! म ता यही उचित समझती हू।

लकिन अपन मुह म माँ को यह बात बताऊँगी कस ? मुझ त बडा जायगा

ना

ना क्या ? तू यह काम भी नही कर सकगी

मैं क्या करूँ ? विवाह तरा हागा। तू अपन आप जाकर कह द। मुझ क्या पडी है ? —वह मुझ सभवत खिझान का आनन्द ल रही थी। मुझ तनिक भी बुरा नही लगा। राजापुर म लौटन क बाद वह पहल स भी अधिक अ तमुख हाती चली गयी थी। इस बहान उसका चहकना का तनिक लौटा हुआ पाया ता अच्छा ही लगा। लाड म भर कर मैंन निहोरी की मरा विवाह हागा इसलिए यह काम तू कर द। तर विवाह क समय यह दायित्व मैं निभा दूगी। मर ता मन बगावत हो जायगा।

तथापि पसन्द का आकृति निश्चय हो गयी। भय मिश्रित जिज्ञासा की पश्चात उस पर थी। तुरन्त ही वह मजन ला आया। उसकी धारा स्वर मर अन्दर म बनाए भर गया मरा विवाह ? मुझम किसका कि

मैं विवाह करने जा रही हूँ।'

मुझे कौन कहगा ? और मैंने ऐसा क्य कहा कि तू अभी विवाह कर रही है। पर कभी तो आखिर करेगी ही। कभी नहीं करेगी क्या ?'

कचन की मुसकराहट मे अथाह शून्य व्याप्त था। तिस पर मुझे चौका देने वाला यह विचित्र प्रश्न, "यदि मै कहू कि कभी नहीं करूँगी, तो ? विवाह क्या सभी के लिए अनिवार्य होना है ? क्या ससार म ऐसी कोई महिला कभी नही हुई जो आजीवन अविवाहित रही हो ?'

सुनकर मैं सन्नाटे म आ गयी। अपने विवाह की बात मैं तब विस्मृत कर चुकी थी।

मन की घाटिया बडी विचित्र होती है। कुछेक तो अगम्य भी। कचन के मन की घाटिया तो और भी बीहड थी। उस दिन उसके सबध म मुझे एक नयी जानकारी प्राप्त हुई।

मैंने तक प्रस्तुत किया 'अपवाद का उदाहरण तो नहीं ही बनाया जा सकता। सामान्य परिस्थितियो म विवाह तो प्रत्येक युवती का होता ही है। तेरा भी होगा।'

कचन की आकृति कठोर हो आयी 'परिस्थितियो का आन्तरिक स्वरूप भी तो कुछ होता है। क्या ऐसा अनिवार्य है कि परिस्थितियो का बाह्य स्वरूप जैसा दीखता है, वास्तविकता सिर्फ वही हो ? वास्तविकता का प्रसार उससे परे किन्ही अनजान छोरो तक भी तो हो सकता है।'

उसकी बात का प्रतिकार सभव नहीं था। तह तक पहुँचने के उद्देश्य से पूछा 'पर तेरे सबध में तो मुझे ऐसा कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता।

इस बार वह खुलकर मुसकरायी थी। निश्चित ही भीतर-ही-भीतर खुद को सतुलित बना लिया होगा। तब जो उसने कहा, उसे सुनकर मुझे अपनी अज्ञानता का आभास हुआ।

मानव मन कितना रहस्यपूर्ण है ! जिसके साथ बचपन से ही रहती चली आयी थी उसी के आन्तरिक व्यक्तित्व से ही जब पूर्णरूपेण परिचित नहीं हो पायी तो विश्व मन को जान लेना कितना दुष्कर होगा ! कचन ने कहा था, 'तू क्या मेरे भीतर का सब-कुछ जानती है ?'

मैंने कहा, 'जितना अब तक देख पायी हूँ वह सब तो जानती ही हूँ।

"और जितना अभी नही दखा ? '

जब मैं परशान हो उठी थी, "तू कुछ वतायगी तभी ता जान पाऊँगी।'

हतात्साहितता का भाव ही उसके स्वर म अपक्षाकृत अधिक मुखर था अभी मैं स्वय ही अपन वार म कितना जान पायी हूँ ! जिस दिन जान लूगी वता भी दूगी। फिर भी ऐसा मुझे अक्सर लगता रहता ह कि विवाह करके मैं सुखी नही रह पाऊँगी। सुख किसी का दे भी नही पाऊँगी। इसीलिए इस ओर मेरी प्रवृत्ति नही हाती।'

मरे समक्ष कचन के मन का एक और धूमिल क्षितिज विस्तारित था जिसम स्पष्ट रूप से कुछ दख पान की कोई स्थिति नही थी। क्या कहती ! पहली थी कि और और उलझती चली जा रही थी।

मेरे भीतरी द्वद्व को उसने उपक्षित नही किया। समभान की-सी थी उसकी भगिमा ' देख माधवी ! विवाह के बाद यदि परस्पर पूण समपण न हो तो इस सस्था का कोई उद्देश्य ही नही रहता। दह मात्र का मिलन क्या विवाह के उच्च आदश को कभी छू सकता है ? बस मेरी यही दुबलता मर आडे आती है। अपने सबध म यह वात ठीक से ही जान गयी हूँ कि मैं समपण नही कर पाऊँगी। ऐसे मे न स्वय सुखी रह सकूगी और न ही उस सुख दे सकूगी जिसके साथ इस पवित्र बधन मे बधना होगा। इसीलिए ता मैंन विवाह न करन का निणय लिया ह। मेरा जीवन का पथ दूसरा हागा। अभी ठीक मे निणय नही लिया। जिस दिन निणय तक पहुँच गयी उस दिन सबस पहले तुझे ही सूचित करूँगी।'

मैंन कुछ प्रतिवाद करन के लिए मुह खोला ही था कि उसन वरज दिया, 'न माधवी और कुछ मत पूछना। तुझे अपनी सौगध दती हू। अब कुछ वता भी नही पाऊँगी। तरे विवाह स मैं सचमुच वहुत प्रसन्न हाऊँगी। तू मर प्राणा की अभिन्न सखी है ! जानती हूँ विवाह के बाद परायी हा जायगी। यह वियोग भी मुझे सहना होगा। अपने इस सूनेपन म मैं नितात अकेली रह जाऊँगी पर मेरी प्रसन्नता इन सब स्थितिया को पीछे छाड दगी!'

इसक बाद इस विषय पर हमारे परस्पर वार्तालाप म एक अस्वाभाविक विराम लग गया।

तूने सौगन्ध दे डाली है, इसीलिए अब कुछ नहीं पूछूंगी।' मात्र इतना कह मैं मूक हो रही। कमर से उठ कर दोनों ने लॉन में साथ साथ चहल कदमी की। गमलों को सींचने का अधूरा छोडा गया काम कंचन ने फिर हाथ में ले लिया। गुरुदेव रवि ठाकुर की तरह अपने बगीचे के एक एक फूल, एक-एक पत्ती से उसका अंतरंग परिचय था। वह उन्हें सींचती सहलाती चल रही थी और मैं मूक दर्शिका बनी उसके क्रियाकलाप निरख रही थी। ईर्ष्या होती थी उसकी तन्मयता पर। मौन मुखर प्रकृति से जैसा तादात्म्य उसने धारण किया था वह क्या मेरे लिए कभी संभव होता? प्रकृति जगत से मेरा जितना भी थोडा बहुत परिचय है वह एकमात्र उसी की दीक्षा का परिणाम माना जाना चाहिए। यहां तक कि अपने इस नये घर में जितने भी पेड पौधे मैंने लगाये है, उन सब में भी कंचन की अभिरुचि की छाप स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

उस दिन रेलवे प्लेटफार्म की खाली पडी बेंच पर कंचन की प्रतीक्षारत समर्पित उन क्षणों में मन यह भी मान रहा था कि इन्हें देखकर सचमुच वह बहुत प्रसन्न होगी। मुझसे लिपटा कर कहेगी— अब आया है तुझे जीवन का ढंग!

जीवन का ढंग आ जाने भर से ही क्या जीवन में कोई कष्ट नहीं रहता? यदि ऐसा ही होता तो कंचन क्यों उत्पीडित हुई? वह जीने का ढंग क्या जानती नहीं थी? जानती थी तभी तो विचलित हुए बिना ही सब कुछ सहा। मेरे विवाह के अवसर पर जिस किसी ने उसे देखा वह कभी सोच भी नहीं पाया होगा कि प्रसन्नता के इस व्यक्तित्व की व्यापक पृष्ठभूमि में कितना अथाह ज्वार उठा करता होगा! मैं ही कहां सोच पायी थी? बस एक सुखद आश्चर्य की अनुभूति मुझे हो रही थी।

उस दिन जिस दिन राजन के संबंध में मैंने अपने निर्णय का परिचय कंचन को दिया था, उसके दूसरे ही दिन वह मां को मेरे निर्णय से अवगत करा आयी थी।

फिर सब कुछ बडी तेजी से सम्पन्न होता चला गया। कुछ ही अन्तराल बाद राजन अपने माता पिता के साथ आये थे। हम दोनों ने एक-दूसरे को निकट से भी देख लिया। कुछ औपचारिक वार्तालाप भी परस्पर

हुआ था और एक बार फिर मुझे लगा कि मैं छली नहीं जाऊँगी। उसी दिन मांगलिक रूप से विवाह की बात भी पक्की हो गयी। कंचन तब खूब चहक रही थी। इतना कि उसने अपने संबंध में मेरी समस्त पूर्वधारणाओं की धज्जियां बिखेर दीं। आनन्दोल्लास का ऐसा उन्माद!

ठीक ऐसा ही उन्माद बरात आने के पूर्व के दिनों में भी उसने दिखाया, जब घर में रात रात भर ढोलक खनकती। विवाहोपलक्ष्य में गाये जाने वाले लोक गीतों की ध्वनि से चतुर्दिक स्नात हो उठता। नारी के अचेतन में मचलती अवगुंठनवती भावनाएँ स्वरों की पायल पहन कर मधुमय लास्य की मुद्राओं में थिरक उठतीं। लगता है जैसे उल्लास का कोई मधुमय स्रोत व्यक्ति के भीतर ही कहीं छिपा रहता है जो अवसर पाते ही अपनी शत सहस्र धाराओं में प्रबल वेग से बह निकलता है!

विवाह का दिन ज्यों ज्यों निकट आता जा रहा था, मारे धुकधुकी के मेरी विचित्र दशा हो रही थी। रह रह कर मात्र यही चिंतन कि अब यह परिवेश मेरा अपना होकर भी मेरे लिए कितना बिराना हो जायगा! कंचन से पृथक रहना होगा! चाची से यदा कदा बिन मांगे मिलने वाले उपदेश अब कहां मिलेंगे? बचपन में रात सोने के पूर्व चाची कितनी ही कहानियां कहा करती। उन सबके सब पात्र उस दिन रह रह कर मेरे नेत्र पटल पर तैरने लगे थे। सच है कि चाची ने कॉलेज में शिक्षा नहीं पायी थी, किन्तु ज्ञान का उनमें अभाव नहीं था। उनके ज्ञान का स्रोत वही था जो भारतीय संस्कृति का मूल है। महाभारत और रामायण के सकड़ों प्रसंग उन्हें कंठस्थ थे। उनकी लोककथाओं की पिटारी कभी रीती नहीं हुई। अपनी उन्हीं चाची से अब कब कब मिलना होगा? मां पिताजी इन सबके आश्रय से दूर किसी अनदेखे अनजाने वातावरण में अपने को नये सिरे से स्थापित करना होगा। मन होता था कि कहीं छिप कर खूब रोऊं ताकि सांत्वना मिले।

इतने दिन लगातार गा गा कर भी कंचन अभी थकी नहीं लगती थी। अभी तक चहकती फिर रही थी। एक के बाद घर का दूसरा काम हाथ में लेती। मुझे तो लगा मानो यह इतना बड़ा आयोजन एकमात्र उसी के सिर पर सम्पन्न हो रहा है। वही एक सूत्रधार है, जो सबका संचालन कर रही

है। सोचती रही कि कितना बडा मन है कचन का ! इतनी प्रसन्नता ! क्या उसके विवाह के अवसर पर मैं भी ऐसा ही कर पाऊँगी ?

कामकाज के दौरान वह घडी भर को मेरे पास आ बैठी। तभी मुझे लगा था कि नही सिर्फ प्रसन्नता नही, अवसाद ने भी उसे घेरा हुआ है। कदाचित दुख सहन करने का यही उपाय उसने खोज निकाला हो।

मेरे पास आकर बैठी तो मुझ से कहे बिना रहा न गया, "सच कचन, तेरी खुशी और उत्साह देखकर तो लगता है जैसा मेरा नही तेरा ही ब्याह हो रहा है।

एकाएक वह मुझ से लिपट गयी और सिसकने लगी। ठीक वैसे ही जैसे असह्य दुख से अभिभूत हुई बिटिया मा से लिपट जाय। ऐसा कातर तो मैंने उसे कभी नही पाया था।

मैंने पीठ सहलाते हुए कहा, "यह क्या, कचन ? ऐसा क्या कर रही हो ?"

उसने कोई उत्तर नही दिया और निरतर सिसकती रही। मुझे कुछ सूझ नही रहा था कि क्या कह कर उसे दिलासा दू ! अभी कुछ देर पहले मैं स्वय रो कर हलकी होना चाहती थी और अब कचन का अश्रु प्रवाह मुझे बेचैन कर गया।

"कुछ कह तो सही, आखिर हुआ क्या ?"

कचन तनिक सीधी होकर बैठ गयी। रुँधे कठ से भीगा हुआ स्वर निकला, "तू अब चली जायेगी और मै अकेली रह जाऊँगी।"

शेष जो कुछ भी वह कहना चाहती थी नही कह पायी। वह सब अभिव्यक्त किया उसके आसुओ ने। मेरा मन हुआ कि उसे गोद मे भर कर खूब प्यार करूँ। ममता का सैलाब मेरे भीतर मे उमडा था पर व्यक्त होते ही उसकी दिशाएँ परिवर्तित हो गयी। उसकी चिबुक ऊपर उठा मैं उसके सिर पर उँगलियाँ फिराते हुए कहा "तू अकेली कैसे रह जायगी, कचन ? घर मे चाची है चाचाजी हैं। मेरी मा, पिताजी भी यही तेरे पास है। और तेरे व फूल पत्तिया। अकेली तो मैं हो जाऊँगी। जिसे एक अपरिचित परिवेश मे सब-कुछ नये सिर से समझना-बूझना होगा। और ऐसा ... है नही कि मैं लौट कर यहाँ कभी आऊँगी ही नही। तेरे बिना कितने ...

वहाँ रह पाऊँगी ? वाल ता जरा ! तू क्या समझती है, मुझ दुख नही होता ? दख तुझ स वायदा करती हूँ कि जब भी तू मुझ बुलायगी, मैं तुरत चली आऊँगी ।

उसकी सिसकियाँ अब थम चली थी । कपोलो पर बिखर आँसू सूख कर नमक क मटमल रग स अवसाद का जसा मूर्तीकरण कर रहे थ वसा किसी मानवीय तूलिका द्वारा सम्भव नही । वह आश्वस्त नही लग रही थी । उस विश्वास नही हो रहा था कि वह अकली नही रहगी ।

मैंन आग कहा तुम्हारा तथाकथित अकलापन भी आखिर कितन दिन का होगा ? स्वप्न रथ पर आरूढ कोइ एक राजकुमार चन्द्रकिरणा क साथ आयगा और अद्वितीय आलाक म तुझ अपन साथ लिवा ल जायगा । तब तुम अकली कहाँ रहोगी । उस क्षण मेरी सुधि भी आयगी तुझे ?

मर इस गद्य गीत को कथन पर बिलकुल विपरीत प्रतिक्रिया हुई । वह एकदम सीधी हो कर बैठ गयी और उसने अपन उसी सकल्प को दुहरा दिया मैं विवाह नही करूँगी, माधवी !

लकिन आखिर क्यों ? ' मैं उसक इस निणय रहस्य का जान ल चाहती थी ।

उसन अपनी थाह नही लन दी । कहा मैं नही समझती कि जीवन म कोई पुरुष मुझ आकर्षित कर पायगा ।

क्या तू सचमुच एसा समझती है ?

हाँ बिलकुल एसा ही ।

तू भ्रम म है ।

क्यों ?

"क्यो कि एसा होना सभव नही । विधाता एसी चूक कभी कर ही नही सकता । ईश्वर का सृजन अधूरा कस हो सकता है ? मुझ भल ही न पता हो पर तरा कोई पूरक भी उसन निश्चित ही कहा न कही सिरजा है । किसी दिन जब तरा उसस आमना सामना होगा तब तू विचलित हो जायगी । वह साधिकार तरे मन म अपना स्थान बनाता चला जायगा । तब तू कवल समपण का राग गुनगुनायगी । किन्ही अदृश्य धागो म जकडती चली जा कर तू अपन स्वय को खो बठगी और उस खाकर ही

अपनी तलाश भी कर सकेगी।"

उसने मेरी बात का कोई उत्तर नही दिया। वह मुझ से असहमत नज़र आयी। मैंने फिर कहा, "कुछ कह देने भर से ही वैसा हो नही जाता। तुम्हारा चिंतन बिलकुल नकारात्मक है। यो भी मुझे लगता है, तुम मुझ से कुछ छिपा रही हो। तुम्हारे भीतर कोई ग्रंथि है जो पिघलती नही। जो कुछ तुमने कहा वह तुम्हारे अपने ही स्वभाव के विपरीत कथन है। प्रकृति का कण-कण जिस में आह्लाद की सृष्टि करता हो, उसे कोई पुरुष आकर्षित ही नही कर पायेगा? कैसे संभव हो सकता है यह विपर्यय? यह सोच अपने को छलने के सिवा कुछ भी नही।'

कंचन ने एक क्षण मुझे देखा और दृष्टि झुका ली। मेरा मुंह अभी बन्द नही हुआ चाहता था। तप्त लौह पर आघात करने से ही उसे मन चाहे आकार मे परिवर्तित किया जा सकता है। मैं भी वही चाहती थी। मैं चाहती थी कि कंचन जीवन के प्रति सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त करे। मैं चाहती थी कि वह मन की उन गांठों को पिघलने दे। गांठों के पिघलने से भी तो पीड़ा होती है। पर उसके बाद की स्थिति सुखद हो आती है। मैं चाहती थी कि आज वह अपने मन की हर बात कह डाले। यही सब सोच कर मैंने अपना कथन जारी रखा।

"जानती हूँ कि तू खुलकर कुछ नही कहेगी बस पहेलियां बुझाती रहेगी। एक बार तुमने मुझे कहा था कि तुम समर्पण नही कर पाओगी। आज तुम कह रही हो कि कोई भी पुरुष तुम्हें आकर्षित नही कर पायेगा। यह सब क्या है? ऐसी हीन भावना तुझ में कहां से व्याप्त हो गयी? जानती हूँ कि रूपगर्विता तुम नही हो पर सौन्दर्य के प्रति ऐसी उदासीनता भी तो कोई स्वस्थ लक्षण नही कहा जा सकता। कभी मेरी नजर लेकर दर्पण मे अपनी छवि निहार लो तब तुम्हें पता चलेगा कि प्रज्जवलित लौ सरीखे दीप्तिमान तुम्हारे इस अनिंद्य रूप पर स्वयं का उत्सर्ग करने के लिए कितने सहृदय नही आ जुटेंगे। मै यह मानने को तैयार नही कि उनमें से एक भी तुम्हारे मन को आकर्षित नही कर पायेगा। किसी एक के भी प्रति तुम्हें आकर्षण नही होगा। ऐसा असंभव है, कंचन! बिलकुल असंभव! इस आरोपित वैराग्य का त्याग तो तुम्हें करना ही होगा।"

अपने इतने लंबे कथन का प्रभाव जानने के लिए क्षण भर को रुक गयी। पर हाय रे विडम्बना! मेरे कथन का समूचा प्रवाह उसके सिर के ऊपर से गुजर गया और वह अप्रभावित रही। उसे मानो इस बात से कोई प्रयोजन ही नहीं था कि मैं क्या कह रही हूँ, वह जैसे अपनी ही किसी उधेड़ बुन में खोयी थी। ऐसे में और कुछ कहना व्यर्थ ही था।

मैंने पुकारा "कंचन!"

उसने सुना नहीं। फिर पुकारा, "कंचन!"

वह जैसे सोते से अचानक जगी हो। अचकचाकर मेरी ओर ताका।

"क्या हुआ है तुझे? कहाँ खो गयी थी?"

"कुछ भी तो नहीं।"—वही उखड़ा सा स्वर।

"इतनी देर मैं क्या कुछ बोलती चली गयी। कुछ सुना भी है तूने?"

इस बार भी उसकी आंखों में वही शून्य समाया था। न कोई प्रश्न न ही किसी प्रश्न का उत्तर।

"अच्छा बाबा, मैं ही अपनी हार माने लेती हूँ। अब कुछ नहीं कहूंगी। जैसे तेरे मन में आये वैसा करना। अपना भला बुरा तुम सोचोगी ही—ऐसा मुझे विश्वास है। पर अब तुम्हारी यह उदासी मुझ से सही नहीं जाती।

एक बार फिर वह मुझसे लगभग लिपट ही गयी। मनुहारयुक्त उसका यह स्वर काफी देर के बाद सुनने को मिला था, 'तू मुझ से नाराज तो नहीं है न माधवी?'

मैं हँस दी। कहा 'आज तक कभी होते देखा है?'

इस बात का उसके पास कोई उत्तर नहीं था। वह खिलखिला कर हँस दी। क्षण भर में ही वातावरण फिर सहज हो आया। मैंने अनुभव किया कि वह निश्चित ही मन में कोई बात छिपाये है जिसे प्रकट नहीं किया चाहती। ऐसे प्रत्येक अवसर पर जब कोई थाह पाने की चेष्टा करे, वह असहज हो जाती है। आपे में नहीं रहती। विदा की उस वेला में उसे और अधिक असहज बना देना मुझे श्रेयस्कर नहीं लगा इसीलिए अब मैंने उस प्रसंग को टाल देना ही उचित समझा।

कंचन!

मां ने किसी काम के लिए उसे पुकारा होगा। वह चुपचाप वहां से

उठ कर चली गयी।

राजापुर वाले चाचा जी और चाची विवाह से एक ही दिन पहले पधारे थे। आशुतोष नहीं आये। क्या नहीं आये होंगे — इस बात की गहराई में जाने का विचार भी मुझे नहीं आया। रात को जब ढोलक की थापें थकने लगीं और अड़ोस-पड़ोस वालियाँ विदा ले अपने-अपने घरों को सिधार गयीं, तभी सब लोग मिल बैठे। सभी लोग में मेरा अभिप्राय मेरी और कंचन की माताओ, राजापुर वाली चाची जी, कंचन और स्वयं मुझ से है। तब परस्पर जो कुछ भी बातचीत हुई उसमें मेरा भाग लगभग शून्य ही रहा। मैंने एक मात्र इतना ही पूछा था कि आशुतोष भैया क्यों नहीं आये? उन्हें तो कई दिन पहले ही आ जाना चाहिए था।—चाची जी से ही पता चला कि आशुतोष इन दिनों जाने किन किन शहरों के भ्रमण पर निकल गये हैं। लौटने में तो अभी महीना भर और लग जायेगा।

राजापुर वाली चाची जी ने मेरी माँ को सम्बोधित करते हुए कहा था, 'जानकी, तुम तो अब गंगा नहा लीं।'

माँ के चेहरे पर परम संतोष का भाव उभरा।

'कंचन के लिए भी कहीं बातचीत चलायी है?'' इस बार कंचन की माताजी से प्रश्न किया गया था। वे मुसकरा कर बोलीं ''आप सबके रहते मुझे चिंता करने की भला क्या जरूरत है? यों, दो चार जगह खोज-खबर उन्होंने ली तो है अम्बिका जीजी, पर ।'

अम्बिका चाची ने भेद भरी बात कह दी। बोलीं, 'बाहर की खोज-खबर तो लेती फिरोगी वसुंधरा पर घर के भीतर कभी नजर नहीं पड़ती। यही बात हुई न कि दिये तले अँधेरा।

वसुंधरा चाची की आँखों में अचरज समा गया। उनकी शब्दावली में जिज्ञासा का भाव था, 'घर के भीतर तुम किसकी बात कह रही हो? भला सुनूँ तो।'

अम्बिका चाची ने छूटते ही कहा, 'क्या? अपने आशु को क्या तुमने कभी देखा नहीं? तुम्हारे विचार में यह जोड़ी क्या बुरी रहेगी?'

कंचन चुपचाप वहाँ से सरक गयी। चाची मुसकरायीं और आगे कहती

चली गयीं, 'दोनो एक दूसरे का अच्छी तरह जानत हैं। इसके बाद भी देखन सुनन का बाकी क्या रह जाता है? मरे मन म तो जाने कब म यह बात पल रही है! कचन को यदि बहू बनाकर घर ला मकू ।"

वसुधरा चाची के मुह स बोल नही फूटे। शायद व साच रही हागी कि अब तक उनका ध्यान इस ओर क्यो नही गया!

मुझे भी लगा कि हा, इस विषय पर इस रूप म ता मैंने भी कभी नहीं सोचा। कचन के लिए आशुतोष प्रत्यक्ष दृष्टि से उपयुक्त है। अम्बिका चाची भी कचन के प्रति कितनी ममता रखती है!

मैं अब एक नयी उधेड बुन म उलझ गयी थी। अम्बिका चाची के इस प्रस्ताव का यहाँ उपस्थित सभी न स्वागत किया था। सभी को अच्छा लगा।

यह अनौपचारिक गाष्ठी जब समाप्त हुई तो रात काफी बीत चुकी थी। सब-के मन नीद की गोद म दुबके थे, पर मेरी आखा म नीद का कोई लक्षण नहा था। अकेलापन और अधिक अखर रहा था। मैं उठी, कचन को उसके कमर म जाकर पुकारा। वह भी अभी सायी नही थी। एक ही आवाज पर उठी और मरे साथ कमरे मे चली आयी। आखा के कोर अभा भीगे थ!

मैंन पूछा रो रही थी क्या?

नही तो!" कहकर मुसकराने के प्रयत्न म वह फिर रा उठी।

उसक मन पर क्या बीतर ही है इस जानने का मेरे पास उपाय ही क्या था इसक अतिरिक्त कि उस से पूछ लू और वह बता द! यही समझा था कि वह अपन विवाह प्रसग की इस नयी स्थिति स समझौता नहीं कर पा रही। मने पूछा अम्बिका चाची ने आज क्या कहा था, तून सुना?'

कचन न स्वीकृति सूचक सिर हिलाया।

'तुझ उस सबध पर कोई आपत्ति है?

'हा!

मुझे बडा आश्चय हुआ। मैं विश्वास नही कर पा रही थी कि यह कचन कह रही है। कितन चाव स राजापुर जाया करती थी। वहा यदि दर तक आशुताप दिखायी न दे तो चाची से उसकी अनुपस्थिति का कारण

पूछा करती थी। उसी कचन के मुह स अब म यह बात सुन रही थी।

एसी घोर उदासीनता ! न सिफ आशुताष क प्रति बल्कि विवाह के प्रति भी ! उस दिन तीज के मेले म उसके बिछुड जाने के प्रसग के अतिरिक्त और तो कुछ विशेष कभी घटित हुआ नही था। हा उस दिन दोना एक दूसरे से बातचीत नही कर रहे थ। पर एसी छोटी मोटी अनबन ता वहा भी होती है जहा सबधो की मधुरता पर उँगली तक नही उठाई जा सकती। मन म किसी आशका न करवट ली—क्या विवाह और आशु के प्रति उदासीनता का कोई सूत्र मेले म उसके बिछुड जाने की घटना स भी जुडता है ? लेकिन एसी भी भला क्या बात हा सकती है जो इतनी गहरी वितष्णा का जन्म दे !

ठीक से सोच नही पा रही थी। तब किसी विकृति की कल्पना भी मेर लिए दूभर थी।

'तुम्हारी इस आपत्ति का आखिर कोई कारण भी ता होगा कचन ?' मैंने पूछा।

क्या यह आवश्यक है कि कोई कारण भी हो ?

आवश्यक क्यो नही ? कारण क अभाव मे कोई काय कभी होता है ? काय कारण की शृ खला क्या अटूट नही ?

कचन अब मुझलाना सीख गयी थी। उसके माथ पर सलवट पडी, होठ भिच गय जसे कोई अप्रिय बात कहना चाहती थी, पर शीघ्र ही सभल गयी हो। सिफ इतना उसने कहा, ' तर जानते आशुताष के प्रति इस सबध की कोई कल्पना मैंने कभी की है क्या ?

"ठीक है नही की। पर कभी की भी नही जा सकगी, यह भी क्या आवश्यक है ?"

'मेर सदभ मे ऐसा ही है !

'तेरी अपनी साच है कचन ! मुझे ता वह हर तरह स तर योग्य लगता है।"

कचन पस्त हो गयी। पराजिता। ऐसा उसके बाह्य आचरण म लगा। किंतु भीतर से वह अब भी उसी अपराजय शिखर पर अवस्थित थी। मुझे समम न पाने की निराश भगिमा के साथ ही स्वर म उसी दृढ सकल्प की

आभा—"तू समझती नहीं, माधवी ! मैंने योग्यता पर कोई प्रश्न चिह्न कब लगाया है ? किंतु मेरी अपनी कसौटी है जो योग्यता अयोग्यता से भी पर देखती है। इसीलिए कहती हूँ कि मुझे कोई भी पुरुष कभी आकर्षित नहीं कर पायगा। अपनी अक्षमता को यदि एक बार विस्मृत भी कर दूँ और विवाह की स्थिति यदि कभी दुर्निवार जैसा कि तूने कहा था, भी हो जाय तब भी वह पुरुष निश्चित ही आशुतोष नहीं होगा मेरी यह बात तू गाँठ बाँध ले !

'बताने को बहुत कुछ है। बताना चाहती भी हूँ, पर समय मे नहीं आता कि कहाँ से प्रारंभ करूँ ! गौरव के उच्च शिखर को छूने का प्रयास भी अब मैं नहीं कर पा रही। न जाने वह कौन-सा मोह दुर्बलता का डर था, जिसने मेरा सब कुछ समाप्त कर दिया। कितनी बार मैंने चाहा कि तुझसे सब कहूँ पर कह न पायी। मानो मुँह पर ताले पड गये हों। मेरी सारी उमंग उभरने के पहले ही टूट टूट कर बिखर गयी। अब तो चारों ओर अंधकार ही-अंधकार है। समझ में नहीं आता कहाँ जाऊँ कैसे रहूँ ! कोई भी अपना नहीं दिखाई देता। मेरी भावना को कोई कैसे समझ पायगा ? मुझसे अब और कुछ मत पूछ। तेरा विवाह हो रहा है। मुझे पूरी आशा है कि तू बहुत सुखी रहेगी।

कंचन ने मुसकराने का प्रयास करते हुए मुझे झकझोर कर फिर कहा चल माधवी, तेरे विवाह में गाने का भार मुझ पर है। देखती रहना मैं बहुत गाऊँगी बहुत नाचूँगी। तेरे विवाह जैसा शुभ दिन मुझे जीवन में फिर देखने को नहीं मिलेगा। तू मेरी चिंता न कर। मैं तो सदा से ही पागल हूँ न !'

मैं कंचन की मुद्रा को एकटक निहारती रही और फिर उसे अपनी ओर खींचकर आर्द्रता से कहा कंचन, आज तूने मेरे साथ बहुत अन्याय कर डाला। मुझ पर भी तुने विश्वास नहीं। मैं तुझ से कुछ नहीं पूछूँगी। अपनी वेदना का रहस्य नहीं बताना चाहती तो न सही पर इतना याद रहे कि माधवी तुम्हारी ऐसी सखी नहीं जो अपने सुख में तुझे भूल जाय। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगी जब तू स्वयं आकर अपना रहस्य मुझे बतलायगी। मैं तेरे अंधकारमय जीवन में ज्योति का संचार करने का

प्रयत्न करूँगी। भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ कि मेरी कचन के सब के सब कष्टों का निवारण करे।"

यह सब कहते कहते मुझे स्वय को सभालना कठिन हो गया।

कचन अपराजय रही। मैं ही पराजित हो गयी। सुलझने के स्थान पर यह गुत्थी और अधिक उलझ गयी। रहस्य, रहस्य ही बना रहा।

दूसरे दिन साझ को बरात आ पहुँची। उमाकान्त दुबे ने सूचित किया था कि बनर्जी बाबू आज ही इसी शहर मे पुन पधारे है। मेरे आग्रह पर पिताजी स्वय जाकर उन्हे सादर लिवा लाये। आज उनका भी आशीर्वाद मुझे प्राप्त होगा यह सोचकर ही मुझे बडा भला लग रहा था।

वे आये पर अधिक देर रुके नहीं।

'मेरा आशीर्वाद है, मा—तुम्हारा दाम्पत्य जीवन सुखी हो कह कर उन्होंने सिर पर वरदहस्त रख दिया। कचन को देखकर वे तनिक चौक गये थे। उसे भी आशिष दी और पूछा, तोमाके की हाए छे मा? ये तो ठीक नहीं। मन को स्वस्थ रखो।'

कैसी पारदर्शी, कैसी मर्मभेदी दृष्टि थी उनकी! कोई कुछ कहे-न कहे पर वे जैसे सब कुछ आपसे आप जान जाते थे।

उनके लौटते ही सब-कुछ शहनाई के करुण स्वरो मे सराबोर हो गया। ढोल, ताशा और नफीरी की समवेत लय गूज उठी। द्वार पर, मुडेरो पर विद्युत का रंगीन प्रकाश—झिलमिलाता हुआ। मद मधुर मुसकानो का आदान प्रदान।

और वे सब अग्नि की साक्षी दिला कर मुझे एक नये जीवन के अन-जाने पथ पर अग्रसर करा गये।

विदा के समय शहनाई का स्वर मानो सिसकारियाँ भर रहा था। मै आपे मे नहीं थी। सर्वस्व प्राप्त कर जैसे मेरा सर्वस्व छिना जा रहा था। पाव मन मन भर के हो गये। चाल लडखडाने लगी। मैंने अपने मे थी भी कहा?

उपचेतन मे तब भी मा के, अम्बिका और वसुन्धरा चाचियो के उपदेश गूज रहे थे। वही उपदेश जो श्रद्धेय जन परपरा मे नववधुओ को देते चले आ रहे हैं। लेकिन उनकी नम्रता का आवरण कभी धुधला नहीं

पड़ता। ममत्व की स्निग्धता से आनप्रोत त्याग और समर्पण के उसी चिरआदर्श का उपदेश।

कंचन उपदेश देने जैसी स्थिति में नहीं थी। फिर भी उसने साधिकार कहा था "पता है न माधवी कि राजन के चयन में मेरा भी बराबर का योगदान है। मेरी सम्मति का जैसा सम्मान तूने पहले किया वही सम्मान भाव सदैव बनाये रखना। इस आश्रम की मर्यादा को कभी आँच नहीं आनी चाहिए। भूल से भी वैसा यदि हुआ तो सिर्फ तुम्हारे ही नहीं, बल्कि तुम्हारे साथ साथ सबके जीवन में विष व्याप्त हो जायेगा।

"पुरखिन!" मैंने कहा था। मेरे अश्रु मुस्करा उठे और मैं उससे लिपट गयी।

कानों के परदे तक हिला देने वाली इंजन की बेसुरी सीटियाँ गूंज उठीं।

मेरी विचार शृंखला भंग हो गयी। आँखें खोलीं तो पाया कि कोई ट्रेन धड़धड़ाती हुई प्लेटफार्म में दाखिल हो रही है। वह बेंच अब भी खाली नहीं थी। अब उस पर एक नवविवाहित युगल आ बैठा था। वातावरण एक विचित्र कोलाहल से परिपूरित हो आया। यात्रियों की रेलमपेल। हॉकरों की आवाजें। गाड़ी तब प्लेटफार्म पर आकर थम गयी थी। लेकिन जिस गाड़ी से कंचन को आना था उसका अभी कहीं अता-पता न था।

ट्रेन के रुकते ही वह नवविवाहित युगल मुग्ध दृष्टि से परस्पर निहारता मुसकराता हुआ उठ खड़ा हुआ और जाने किस प्रतीक्षित की खोज में ट्रेन की ओर बढ़ गया।

उनके जाते ही मैं फिर अकेली हो गयी। भीड़ में भी अकेली। तन मन पूरे मनोयोग से उस अकेलेपन की वांछा की थी और प्रयत्नपूर्वक भीड़ में वहीं पर स्वयं को खींच ले गयी।

कभी-कभी व्यक्ति अकेला होना भी तो चाहता है। भीड़ बेमानी हो रहती है जब उसमें अपनी धड़कन गुनने वाला कोई न हो। तब वह अपने आप से कटकर बाहर की भीड़ में आँखें चुराकर अंतर्मुख होना चाहता है। उस भीड़ में शामिल होना चाहता है जो उसके भीतर होती है। स्मृतियों की भीड़। और उस भीड़ में किसी पराये का प्रवेश निषिद्ध ही होता है।

वहा सब अपन है। हृदय के स्पदन के निताात निकट, वल्कि उसमे एकीकृत !

अभी अभी जो नव विवाहित युगल मेरे पास से उठकर चला गया था, इस बार वही मेर चिंतन का केन्द्र बिन्दु बन गया। मैं भी एमे ही दुल्हन बनकर पति गह म आयी थी। फिर कचन भी एक दिन एमे ही वनी थी दुल्हन।

मित्रो मे परस्पर जसी भावभीनी नोक झोक चलती है आह्लादित करने वाला विवाद होता ह उसका रसास्वादन कचन ने मुझे खूब कराया है। उसी ने अनक बार घोषणा की थी, 'मुझ कभी कोइ पुरुष आकर्षित नही कर पायेगा मैं भी किसी का कभी समपण नही कर पाऊँगी।'

क्या ऐसा नही कि व्यक्ति मानस के अनक स्तर होते हो ? मन की ऊपरी सतह जब एक बात कहती हो तो भीतरी सतहो म कतिपय भिन्न स्वर उभरते हो। अर्थात कचन जब कहती 'मुझे कभी कोइ पुरुष आकर्षित नही कर पायेगा' तो भीतरी सतहो से गुपचुप आवाज आती हो—देखती हूँ कौन मुझे नापसद कर पाता है ! और जब वह कहती 'म कभी किसी का समर्पिता नही हो पाऊँगी' तब मन की किसी अत्यन्त गहरी घाटी से प्रतिध्वनिया उभरती—मेर एकात समपण का मूल्याकन भला कौन करेगा !

सच तो है। कचन को किसी ने अस्वीकार किया ? पर इसके विपरीत क्या उसका एकात समपण मूल्याकित हो पाया ? वाह्य सौदय के प्रति आसक्ति और बात है लकिन आतरिक सौन्दय का भी रसास्वादन कर पाने म सक्षम सहृदय कितने होते है ? व्यक्ति की अहमन्यता का व्यवधान इतना अभेद्य होता है कि उसके असख्य स्तरो को चीर पाने म अक्षम उसकी स्थूल दृष्टि आतरिक सौन्दय की झाकी देख ही नही पाती।

हजारो साल नरगिस अपनी बेनूरी प रोती है
बडी मुश्किल से होता है चमन म दीदावर पदा।

कचन भी एमे ही अभागो म स एक थी।

राजापुर के मेले म भटक जाने की घटना के बाद उस के मन म जो गुत्थिया उलझ गयी थी उन्होने उसके पुरुष-द्रोह को मुखर किया। आशुतोष ही उसका मूल कारण था। यह रहस्य कचन न वरसो बाद मुझ

प्रकट किया था। तब, जब वह कमल से विवाह कर के भी लगभग परि-त्यक्ता सा-सा जीवन व्यतीत कर रही थी। सुन कर मैं सन्नाट म आ गयी। आशुतोष के प्रति मेरी अब तक की चाह आक्रोश की आग म धू धू कर जलने लगी। कचन तब क्षमामयी बन गयी। बोली, "उस पर क्रोध व्यथ है। क्षण विशेष के व्यामोह ने उसे ग्रस लिया। अनुरक्ति का अभाव घणा तो नहीं कहलायगा।"

मैंने सपाट प्रश्न किया, "इस ओर प्रवत्त होने से पूव क्या उसने तुमसे स्वीकृति का कोई लक्षण पाया था, कचन ?'

यह बिलकुल भी हतप्रभ नहीं हुई। मेरे प्रश्न की तीक्ष्ण धार उसके व्यक्तित्व म टकरा कर कुण्ठ हो गयी। एक ईमानदार आत्मस्वीकारोक्ति! एक गहरा आत्म विश्लेषण! मैं चमत्कृत हो आयी। कचन ने कहा था, "ठीक से कुछ कह नहीं सकती। शायद देखा हो नहीं भी हो सकता ऐसा। मानती हूँ कि मेरे मन पर उसके व्यक्तित्व का प्रभाव था। उसे देखते ही मैं पिघलने लगती थी। पर मेरे इस आकषण का वास्तविक स्वरूप क्या है मैं स्वय उस रूप से परिचित कहाँ थी? जीवन के उस रहस्य के प्रति अभी वसी जिज्ञासा भी मुझम कब थी? सम्भवत धीरे धीरे मेरे आकषण का स्वरूप निखरता किन्तु पुरुष की वह आदिम अधीरता! उसी ने मुझे सवनाश के कगार पर ला खडा किया। प्रेमाभिव्यक्ति का यह रूप कितना भयकर है जो व्यक्ति को अनास्था के बीहड मे भटकने के लिए छोड देता है !"

'तुमने उस आचरण का प्रतिकार किया था?'

बडा विचित्र प्रश्न है तुम्हारा माधवी!' कह कर वह हँसी थी—एक विचित्र हँसी। फिर कहा था, 'नारी के प्रतिकार का कोई अथ क्या होता है? वह यदि अपने जीवन की चादर को ज्यों का त्यों दिखा भी दे तब भी एकपक्षीय न्यायाधीशों की मलिन दृष्टि उसकी उज्ज्वलता का स्वीकारेगी नहीं। उस निजन म प्रतिकार का परिणाम भी क्या होता? और मुझे ही ठीक से होश भी नहीं था। मेरी चेतना अपमान, ग्लानि और अवशता के कारण लुप्त होती चली गयी। मैं नहीं जानती कि तब क्या हुआ, कम हुआ। पर बाद मे सब-कुछ स्पष्ट हो आया। और मैं जड हो गयी! प्रेम जिसे कहते हैं उसके इस रूप से घणा का उदय मुझ म हुआ! उन्हीं क्षण

वर्षों भयानक वलया म घिरी मैं टूटती रही, बिखरती रही। बस तुम्हारा सामीप्य ही मेरा वल रहा।'

रहस्य पर से आवरण हटत ही मेले म भटकाव वाले दिन का सम्पूण घटनाक्रम एक बार फिर मर नेत्र पटल पर साकार हो आया।

तब तुमने मुझे यह बात बतायी क्या नही ? अपनेपन की परिभाषा क्या यही ह ?

कचन तनिक उत्तेजित हा आयी 'क्या बतलाती रे तुझे ? अपन कलक की कथा ? सुनकर तुझे क्या सुख मिलता ? मरी तरह तुम्हारे मन में भी आशुतोष की कैसी छवि अकित हाती ? बाल ता ! मुझे पता है, मरी ही तरह वह भी जला है। पश्चाताप की आग म निरतर झुलसता रहा है ! तुझे यदि बताती तो तुम्हारी उपेक्षा का पात्र बन जाता। उसकी जलन द्विगुणित हो जाती। एक क्षण क भटकाव का इतना बडा दड उस मेलत देख कर मेरी आत्मग्लानि आर बढ जाती ! यह भी क्या उचित होता ?"

मरे समक्ष तब कचन की एक नयी ही छवि मूर्तिमान हा आयी ! स्पष्टवादिता, क्षमा, करुणा आदि सी त्य की रेखाओ मे उकेरा गया सात्विक भावनाओ का पत्र !

जिस न उम जड पत्थर बना दिया, उसके ही प्रति इतनी करुणा, उसी की हित कामना ! मुझे लगा कि मैं आजीवन कचन की थाह नही न पाऊँगी। वह जहा अवस्थित थी, उन ऊँचाइयो का मैं स्पश कर पाऊगी— यह स देहास्पद ही लगा। तब भी मैं निमम बनी रही। मत्री का स्नेहाधिकार कभी निमम भी तो बना देता होगा। मैंने कहा फिर भी यदि उसी समय मुझ से सच बात बतायी होती ।

मरी निममता को अपराह म ही निष्प्रभाव कर उसने स्वय मुझे ही आत्म मन्थन की जमीन पर पटक दिया। बोली 'तब मेरे प्रति तेरी क्या धारणा बनती ? अविश्वास नही कर रही हूँ, माधवी। व्यक्ति मानस की भावना बडी विचित्र हुआ करती है। तेरे व्यग्य का सामना मैं कर सकती थी, पर मेरी हित कामना से प्रेरित हो तू यदि आशुतोष क प्रति अकरण हो उठती तो क्या बात निकल नही जाती ? इतना साहस कहाँ से जुटाती ? इस स्खलन के बावजूद अभिमान से सिर ऊँचा कर क्या चल पाती ?

समझने का प्रयत्न करो। कम से कम तुम तो करो ही, माधवी !

कंचन की ये आत्मस्वीकारोक्तियाँ तो, मैंने कहा न बहुत बाद की है। जब वह परित्यक्त प्राय थी। किंतु इससे पूर्व का समस्त घटनाक्रम काफी व्यापक है। उस दिन प्लेटफार्म की खाली बेंच पर पलकें मूँदे बैठे बैठे यह सब भी मैंने सोच डाला था। कोई प्रयत्न इसके लिए करना नहीं पड़ा। यह प्रक्रिया स्वतः सम्पन्न होती चली गयी। घटनाक्रम के प्रत्येक आत्मसात क्षण की पीड़ा को मैंने नये सिरे से भोगा था।

विवाह के बाद विदा की वेला में कंचन को मैंने विश्वास दिलाया था कि वह जब भी बुलायेगी, मैं तुरंत उसके पास चली आऊँगी।

पर कंचन ने कहाँ बुलाया ? उसकी स्नेहाभिव्यक्ति के प्रकार दूसरे हैं ! मैं स्वयं ही गयी थी। विवाह के कुछ माह बाद मायके जाना हुआ। राजन साथ ही गये थे मुझे पहुँचाने। उससे पूर्व माँ ने कई बार पत्र के माध्यम से सूचित किया था कि पिताजी मुझे लिवाने आ रहे हैं, पर मैंने ही अस्वीकृति भेज दी। ससुराल में सुख मिलता है तो जननी जनक सखी सहेलियाँ तक की सुध-बुध बिसर जाती है पर एक दिन माँ के लिए बेचैन हो उठी। राजन से कहा। मायके से ही कोई लिवाने आये—इस लोकाचार की चिंता किये बिना वे स्वयं मुझे लिवा ले गये। मैं भी अकस्मात उपस्थिति से सब को चमत्कृत कर देना चाहती थी।

वे सब सचमुच चमत्कृत हुए। हर्ष विभोर माँ की आँखों में आँसू भर आये। मेरे स्वास्थ्य, निखरते हुए रूपरंग और मगन उल्लास को निरख वे आनंदित हुई।

कंचन मिली तो मैंने उलाहना दिया 'तूने तो बुलाने की आवश्यकता ही नहीं समझी। ले मैं खुद चली आयी हूँ।" मुझे देखकर वह अपने हर्षोद्वेग को दबा न सकी। कस कर मुझसे लिपट गयी। परस्पर आलिंगन का यह बंधन ढीला हुआ तो मेरे उलाहने के उत्तर में उसने भी उलाहना ही दे डाला हाँ तूने तो जैसे अपने कुशल समाचार के एक के बाद एक ढेरों पत्र लिख भेजे हैं ! अच्छी खासी फाइल बन गयी है मेरे पास !'

मैं सचमुच खिसिया गयी !

कंचन ने कहा देखो रानी ! गुस्सा मत करो। हमें पता था कि आप

को अपना नया जीवन इतना अधिक राम [illegible]
बैठी। इस म बुरा भी क्या है? साथ [illegible]
बाधा क्यों डालें [illegible]।"

ऐसी ही ढेरा बातें। जब तक [illegible]
लौट आये [illegible]। जब फिर बैठा [illegible]
रहा था कि बचन की जडता जम [illegible]
धीरे मुखर हो रही थी—न [illegible]
भी उसमे तिरोभाव था।

राजन दो दिन वहा [illegible]
प्रभाव छोडा। बचन तो उनमें [illegible]
म चपल परिहास और [illegible]
वातावरण छा गया। [illegible]
दृष्टिकोण म अब निश्चित [illegible]
देना होगा। मन की [illegible]

उन दिनो माघ [illegible]
हवा तीर सी बीधती। [illegible]
मैंने छेडा 'तग [illegible]
मायके पहुँचा [illegible]
होगा। ठीक है न, [illegible]?

ऐसा ही लगा था। आज वह भीतर से बसी-की बसी ही थी।

प्रद्युम्न ने मैं बोली, 'तूने मैं तो मान लिया कि मैं विवाह करूँगी ही ?"

मैं अचकचा गयी। इस उत्तर की उम्मीद कम से कम इस बार मैंने नहीं की थी। फिर भी कहा "आखिर करना तो होगा ही न। बटियाँ क्या माँ बाप के यहाँ आजीवन बठी रहती है ? चाची की चिंता के बारे म भी कभी सोचा है ? तुम्हार इस निणय से चाचा जी के मन पर क्या प्रभाव पडेगा, इस पर भी कभी विचार किया है ?"

वह तनिक कुठित हुई, किंतु दृढता में अतर नही आया। कहा, ' तुझ मैंने कहा था न एक बार कि मैं दूसरे रास्ते की तलाश करूँगी। किसी एस सृजनात्मक माग की तलाश जहाँ स्व से पर पर' का ही सबन्ध मान सकू। जहाँ निर्माण की दिशाओं म मन को मुक्ति मिलती हो। अन्य की पीडा को अपनी वेदना से बडा मान कर उसे बँटाने म ही जहाँ आनन्द की अनुभूति हो ।"

मैं हँसी। ' य सब काव्य मूलक आदश की बातें हैं। एस आदश, जीवन के यथाथ तक पहुँचते ही पिघलने लगते है, कचन ! तब जो फल होगा यदि वह भी असह्य हो उठे तो ? पर की पीडा को हरने का माग क्या वैराग्य स होकर ही गुजरता है ? अपने मूल म क्या यह भावना तुम्हारा पलायन ही नही होगा ? '

कचन ने कहा तुम शायद गलत नही कह रही हो। मूल म पलायन भी हो सकता है। ठीक ठीक कुछ कह नही सकती। पर यदि वही हो तो भी क्या ? यह पलायन विध्वसमूलक तो नही अकमण्यता के गत म तो नहीं धकेलता। जो राह निर्माण और कमण्यता को स्वीकारती है, वह यदि पलायन की ही हो तो भी उपक्षणीय कसे होगी !"

अच्छी तरह सोच लो। जीवन भर का प्रश्न है। अवसर व्यतीत हो जान पर यदि निणय परिवतन की अपेक्षा अनुभव हुई तो और अधिक वेदना होगी। प्रवत्ति और समाज सेवा म कहीं कोई विसगति मुझे तो दृष्टिगत नही होती।'

उसकी स्वर भगिमा परिवर्तित हुई। सुनकर अच्छा ही लगा। सिद्धातत तुम्हारी किसी भी बात को मैं न मानू एसा नहीं है माधवी ! फिर भी

मेरी अपनी मानसिक स्थिति है जिसमें मैं विवश हूँ। पर तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि उस पथ पर चलते हुए यदि कभी किसी ने मुझे आकर्षित किया तो उसकी अवमानना नहीं करूँगी। तुमसे छिपाऊँगी भी नहीं।"

उसके इन शब्दों से भी मुझे कुछ कम तसल्ली नहीं हुई। यों प्रत्येक को अपने ढंग से जीने का अधिकार है, किंतु मुझे लगता था कि कंचन का अविवाहित रहने का निर्णय सहज मानसिक स्थिति की देन नहीं। मैं चाहती थी कि वह जो कुछ भी करे, सहज स्वभाव से ही करे। इसीलिए जब उसने विवाह की संभावना को बिलकुल ही अस्वीकार नहीं किया तो मुझे काफी राहत मिली। कम से कम इस धारणा को तो पर्याप्त बल मिला कि यदि कंचन के मन में कहीं कुछ ग्रंथियाँ है भी, तो निश्चित ही समय पाकर वे निर्मूल भी होंगी।

प्रवास के उन्हीं दिनों कंचन के सामने ही चाची जी ने एक बार प्रसंग उठाया था। उनका आग्रह था कि मैं उसे समझाऊँ। एक से एक अच्छे रिश्ते उसके लिए आ रहे हैं पर वह इस बारे में कुछ सुनना ही नहीं चाहती।

कंचन ने तत्काल विरक्ति का प्रदर्शन किया था, 'तुमसे कितनी बार तो कहा है न माँ, कि मुझे अभी विवाह नहीं करना।

चाची बेचारी हतप्रभ हो आयीं। यों कंचन की भंगिमा में उनके प्रति अनादर का कोई भाव नहीं था। बात पूरे सम्मान और शिष्टता के दायरे में ही कही गयी थी, फिर भी चाची हतप्रभ हुईं। उन्हें इस बात की कतई कोई उम्मीद नहीं थी कि मेरी उपस्थिति में भी कंचन उन्हें इस प्रकार उत्तर देगी। उनका अपना युग बोध था। कंचन के प्रति ममता की भावना ने उन्हें नये जमाने के अनुरूप बदलने में काफी सहायता दी थी, पर परिवर्तन की एक सीमा थी जिसके परे जाना उनके लिए कदाचित संभव नहीं था। वे क्षण भर को अवाक् सी रह गयीं। चाची जी की इस व्यथा से पीड़ित मैं भी हुई थी, किंतु कोई प्रतिकार मेरे लिए संभव नहीं था।

क्षण भर बाद चाची जी ने ही फिर कहा, "राजापुर वालों को तो तू भी अच्छी तरह जानती है, माधवी! आखिर कमी क्या है आशुतोष में? देखा भाला लड़का है। सब से बड़ी बात तो यह कि वे स्वयं अपनी ओर से ही रिश्ते की बात कई बार उठा चुके हैं। हम लोगों का तो लड़का बहुत

पसद है, पर ।'

कचन फट पडी इस बार, शादी-वादी की बात अगर कभी मान भी जाऊँ माँ, ता भी यहाँ मरा रिश्ता हरगिज नहीं हागा। मर जीन जी एसा नहीं हो सकता। इसक उल्लेख मात्र स मुझे घृणा हाती है।

कचन का एसा रूप मर सामन इसस पूव कभी नहीं आया था, लकिन इस पर मरी प्रतिक्रिया चाची जी स कुछ भिन्न थी। इसस मरी उस पूव धारणा का और बल मिला कि कहीं न-कहीं कुछ एसा अवश्य है जो आशुताप का प्रसग आते ही उस विक्षुब्ध बना डालता है यह उत्तेजित हो उठती है। तब मरी कल्पना मात्र इतनी ही दूरी लाँघ पायी थी कि कचन की आत्मवाञ्छिता आशुताप स एस सबध क विचार मात्र को भी इसलिए बुरा समझती है क्योंकि आज तक वह उसका आशुतोष भया ही था। एस सम्बोधन क बाद किसी और रिश्ते की बात साचना भी शायद उस अच्छा न लगता हो।

तेजी से अपनी बात कह कर वह उसी उन्मादित अवस्था म वहाँ स चली गयी।

चाची क्या करती ! उनकी आखो म आँसू छलक आय। मैंन उनस सिर्फ इतना कहा 'आप तो नाहक परशान होती हैं चाची ! एक-न एक दिन अक्ल आ ही जायगी। एसी हालत म उस पर अधिक दबाव डालना भी तो ठीक नहीं होगा। क्रोध म व्यक्ति जान क्या कुछ कह बठता है !

व सिहर उठी और झट स आँचल का छोर आखो स सटाकर उमडते हुए आसुओ का वहीं दबा दिया। बाली, अब तू ही उस समझा, बिटिया !

आप चिंता न करें। मैं भी बात करूँगी, पर आशुतोष स रिश्त की बात पर आप भी अब जोर मत दीजियगा।'

चाची बोली जोर हमने दिया ही कब है ? वो ता एक बात थी सो कह दी पर कहीं क लिए ता हामी भरे ।'

मैंन चाची जी को आश्वासन दिया तो था कि कचन स बात कर उस समझान का भरसक प्रयत्न करूँगी पर जब तक वहाँ रही तब तक इस सबध म कोई वार्तालाप न हो सका। उसे दुख पहुँचान का इरादा मरा

नहीं था, इसलिए मन स्थिति देख कर ही बात छेड़ना चाहती थी। वसी मन स्थिति उसकी कभी हुई नहीं।

मुझे विश्वास है कि बात यदि उठती भी तो मारा प्रयत्न निष्फल ही रहता।

यो अन्य विषयो पर पर्याप्त बातचीत होती ही रहती। कचन का इरादा मुझ पर अधिकाधिक स्पष्ट होता गया कि वह विवाह के घेरे म न उलझ कर सामाजिक क्षेत्र म किसी सृजनात्मक काय का आरभ कर जीवन की समस्त रिक्तता का पूर्ण करगी।

मैं लगभग एक माह तक ही वहा रह पायी। हमारे परीक्षा परिणाम घोषित हो चुके थे और हम दोनो को ही प्रथम श्रेणी मिली थी। कम से कम मेरे लिए यह बडी महत्वपूर्ण उपलब्धि थी—एक दम अप्रत्याशित।

फिर पहले राजन का पत्र आया और शीघ्र ही वे स्वय भी चले आय।

और वहा म लौट कर मैं एक बार फिर दिल्ली की व्यस्तता म डूब गयी। लौटते हुए कचन से वायदा लिया था कि वह अपनी समस्त गति विधियो और निणयो से मुझे निरतर अवगत कराती रहेगी।

दिल्ली के इस दक्षिणी अचल म तो अब कुछ समय स आवास बना है पहले पुरानी दिल्ली के क्षत्र मे ही खूब रची-बसी थी। पूवाग्रहो के आव रण को एक झटके से उतार फेंकने मे मुझे सिद्धहस्तता का जैसे वर प्राप्त है। जहा रही वहो की—उसके समूचे वातावरण का खूब पयवेक्षण किया और तटस्थ न बन रह कर उसम रच बस भी गयी। मेरा सौभाग्य कि समस्त व्यावसायिक व्यस्तताओ के बाद भी राजन परिवार के लिए भर-पूर समय निकालते है। यहा के अधिकाश साहित्यिक समारोहो म हम दोनो साथ साथ ही गये है। प्रसिद्ध सगीतज्ञो का रात रात भर साथ-साथ बैठ कर ही सुना है। नितात सामान्य आर्थिक स्तर के व्यक्तियो की तरह मीलो तक पाव पाव ही सैर की है। नयी नयी बनती चली जा रही अन धिकृत बस्तियो की कच्ची-पक्की गलियो-सडको को देखा है और उनकी समस्याओ को समझा है।

राजन पूछते 'आज किधर चलोगी?

मैं कहती, "यमुना पार की नयी बन रही बस्तियो की ओर

आयें तो क्या रहे ?'

ऐसे ही अटपटे उत्तर हुआ करते मेरे। कभी दिल्ली के गली-कूचों में घूमने की इच्छा जिनके बारे में कहा गया है 'कौन जाये जौक अब दिल्ली की गलियां छोड़ कर।' और कभी यमुना पार की रेती पर कदम-कदम नंगे पांव चलने की ख्वाहिश। प्रारंभ में राजन को यह सब मेरी सनक नजर आया करती। फिर शीघ्र ही मेरी भावना को उन्होंने समझ लिया। ऐसा नहीं कि शुद्ध मनोरंजन के स्थानों पर हम न घूमे हों अथवा उनके अपने परिवेश में घुल मिल कर न रही होऊं। दोनों ओर को मैंने सहेज कर रखने का प्रयत्न किया। कदाचित इसीलिए पारिवारिक स्तर पर जीवन में कहीं कोई गतिरोध नहीं आया। सास-ससुर ने खुले मन से यहां आते ही मुझे अपना लिया।

कथन की बात कहते कहते अपनी बात ले बैठी हूं। मूल कथा का अनिवार्य अंग यह है अथवा नहीं, कह नहीं सकती। पर जिस प्रसंग का उल्लेख करना चाहती हूं, उसे किये बिना शायद मूल प्रसंग पर न आ पाऊं। कथा की शैलीगत बारीकियों के पारखी क्षमा करें। बात यह है कि इस प्रसंग का सीधा संबंध मेरे लेखन से है। अंतर में दबी लेखन की पूर्व प्रेरणा इसी अवसर पर पुनः उद्बुद्ध हुई थी और तभी कथन का केन्द्र बिंदु मान कर मैं इस रचना की शुरुआत भी कर पायी।

बात यह है कि मेरे पतिकुल में अंग्रेजी का बोलबाला ही अधिक रहा। राजन के पिता ही नहीं, मां भी पारिवारिक स्तर पर भी अंग्रेजी के प्रयोग को ही महत्व दिया करती। अब यह और बात है कि हिन्दी के अनेक प्रमुख साहित्यकार इस परिवार में बराबर सम्मान प्राप्त करते आ रहे थे। ऐसी गोष्ठियों के आयोजन अक्सर घर में भी हुआ करते।

बस इसी एक स्तर पर प्रारंभ में मुझे बड़ी परेशानी हुई थी। परेशानी इस बात की नहीं कि मुझे अंग्रेजी आती नहीं या मैं बोल नहीं सकती थी, बल्कि इस बात की कि आवश्यकता न रहने पर और विशेष रूप से आपसी पारिवारिक बातचीत में मैं इस भाषा का प्रयोग उचित नहीं मान पाती थी। राजन इस विषय पर शुरू से ही तटस्थ रहे। न सिर्फ इतना बल्कि मेरे मत का प्रभाव भी उन पर काफी हुआ लेकिन श्वसुर महोदय

आज भी मुझ से पूर्णरूपेण सहमत नहीं हो पाये है।

अब सुनिए उस प्रसंग की बात जिसका उल्लेख करने के लिए कथा-प्रवाह को तनिक अवरुद्ध कर देना पड़ा।

एक सुप्रसिद्ध कवि उन दिनों अतिथि रूप में घर में आये थे। एक दिन उन कवि महोदय ने अनौपचारिक गोष्ठी का आयोजन किया, और उन्होंने उस दिन एक बड़ी मार्मिक बात कह दी। राजन के पिताजी को संबोधित कर हँसते हुए मेरी ओर इंगित करते हुए कहा था, 'इस लंकापुरी में एक मात्र यही एक विभीषण नजर आती है।'

बात उन्हें लग गयी। उसके बाद तो काफी परिवर्तन भी उन में आया, वातावरण हिन्दीमय होने लगा। मेरे साहित्यिक अनुराग की बात भी उन्हीं दिनों सब पर स्पष्ट हुई। फिर तो खूब प्रोत्साहन मिला।

इतना होने पर भी लेखन की मानसिक पृष्ठभूमि ठीक ठीक तभी बन पायी जब उस दिन अप्रत्याशित रूप से कंचन का वह पत्र मिला जिसमें उसने कमल के साथ मेरे यहाँ आने की सूचना दी थी। उस दिन पहली बार लगा था कि हाँ अब कंचन वाले कथानक को एक दिशा प्राप्त हो गयी है।

रेलवे प्लेटफार्म की उस खाली बेंच पर आँखें मूँदे बैठे-बैठे उस दिन मैं यह सब भी सोच गयी थी। तब भी मैंने सोचा था कि कंचन द्वारा की गयी भविष्यवाणी—"और तेरी सबसे पहली पुस्तक मुझ पर आधारित होगी, समझी!" का सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न अवश्य करूँगी।

खैर, मैं बता रही थी कि पुनः दिल्ली लौट कर मैं यहीं खो गयी फिर काफी समय तक उसका कोई समाचार नहीं मिला। उस बीच एक दो पत्र मैंने उसे लिखे थे किंतु उत्तर नहीं मिला। तब एक दिन अकस्मात उसका पत्र आया। पत्र क्या अच्छा-खासा आत्मकथ्य लगा। काफी लंबा पत्र था। मैंने उसे बार-बार पढ़ा और अनुभव किया कि अततोगत्वा मेरा ही कथन सत्य प्रमाणित हुआ है। कंचन कहती थी कि कोई भी पुरुष उसे कभी आकर्षित नहीं कर पायेगा। वह स्वयं भी कभी किसी को समर्पिता नहीं हो पायेगी। वही कंचन अब समर्पण को आतुर है।

वह पत्र इन लिखते समय भी मेरे पास रखा है। अपनी ओर से कुछ न कह कर उसे ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर देना—मेरा विचार है—ज्यादा

अच्छा रहगा—

प्रिय माधवी

तुम्हारे दोनो पत्र मुझे यथा समय ही प्राप्त हो गये थे। समयाभाव के कारण उत्तर नही दे पायी।

शब्द 'समयाभाव' पढ़कर तुम्हे आश्चर्य होगा। सोचोगी कि कंचन के पास समय का क्या अभाव हो सकता है? लेकिन सच मानो तो माधवी बिलकुल ऐसी ही बात है!

विवाह के बाद जब तुम यहा आयी थी, तब तुम्हे मेरे सबध मे अनेक अप्रिय प्रसगो का सामना करना पडा था। तू मुझे लेकर अक्सर दुख ही उठाती रही। तूने तरह-तरह से मुझे कुरेद कर मेरे भीतर का कुछ भेद लेना चाहा, पर कुछ कल्पित अनुमानो के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नही हुआ होगा!

माधवी, कई बार चाहा है कि तुम्हे सब-कुछ बता दू। समय ने परिस्थितियो ने जो दुरभिसधि मेरे विरुद्ध की और उसकी जो विपरीत प्रभावान्वितिया मेरे मन पर पडी, उन सब से तुम्हे परिचित करा दू। लेकिन हर बार सिर्फ काप कर रह गयी। सोचा मेरी व्यथा सिर्फ मेरी है। उसमे तुम्हारा तो कुछ भी नही। उसका कोई अश तुम्हे भी क्या सहना पडे! इसीलिए कभी कुछ बता नही पायी।

स्त्री जाति को सदैव सहन ही करते रहना पडा है माधवी! हृदय मे अपार वेदना को छिपा कर अपने कर्तव्यो का पालन करते रहना ही स्त्री जीवन है! इसमे किसी का दोष भी क्या? भगवान ने उसे बनाया ही ऐसा है! मैंने कई बार सोचने का प्रयत्न किया कि नारी जाति के मन मे कभी भी विरोध भावना का सचार क्यो नही हुआ? पूर्ण रूप मे यद्यपि उसका उत्तर नही मिला किन्तु कभी कभी लगता है कि विरोध के भी कई रूप हो सकते है। और उनमे मे विशेष महत्वशाली रूप है—मौन विद्रोह। जानकी देवी सीता ने अपना कर्त्तव्य निभा, बच्चो का लालन पालन कर अपने जीवन का अन्त करके अपने विद्रोह की अभिव्यक्ति सारे ससार को करा दी। मुझे तो ऐसा ही लगता है माधवी!

जहाँ तक मेरा प्रश्न है जीवन का अन्त कर देने की भावना मे मैं कभी

ग्रमित नहीं हुई। किन्तु जो परछाइयां मेरे हृदय पर किसी क्षण-विशेष ने अंकित कर दीं उन्हें निर्मूल करने में कितनी ऊर्जा का अपव्यय होता है कितना तनाव और घुटन सहन करने पड़ते हैं ! इसकी कल्पना तुम्हारी संवेदना अवश्य कर पाती होगी।

अपने विवाह वाले दिनों की स्मृति तुम्हें है न ? मैं कितना गाती रही। गाते-गाते अपनी सुध बुध खो बैठी थी। मेरी वह प्रसन्नता कृत्रिम नहीं थी माधवी, लेकिन उसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप निश्चित ही आरोपित था। वैसा करना मेरी मानसिक विवशता थी। भीतरी तनावों से मुक्ति पाने का और कोई सरल उपाय मेरे पास नहीं था।

मेरी मन स्थितियों को लक्ष्य कर तुम मन ही मन अक्सर रोयी होगी। सब-कुछ जान लेने पर तुम और भी अस्थिर हो उठती। अपने साथ साथ तुम्हारी भी अस्थिरता मेरे लिए असह्य हो जाती। इसी से कभी कुछ बताया नहीं तुम्हें।

कुछ बता तो अब भी नहीं पाऊँगी किन्तु विश्वासपूर्वक कहती हूँ कि अब मैं धीरे धीरे सतुलित हो रही हूँ। अब मैं टूटन की स्थितियों से उबर जाऊँगी। अब मेरी स्वाभाविकता को निरख कर तुम आनन्दित होगी।

तुम्हें स्मरण है, जिसे तुमने पलायन कहा था उसी सजनात्मक पथ पर अग्रसर होकर अपनी मुक्ति का सोपान मैंने खोजा है। यह सोपान निश्चित ही मुक्ति तक पहुँचायेगा—विश्वासपूर्वक कह नहीं सकती। मन की आस्थावती बलवत्ता मुझ से दूर भाग चुकी है फिर भी लगता है कि इस सोपान को तय करना ही होगा। एक बार फिर यदि छली भी जाऊँ तो सहूँगी।

विचित्र लग रहा होगा तुम्हें। जिसने सारे प्रयत्न करने पर भी अपने मन को तुम्हारे समक्ष उन्मुक्त नहीं किया, वही 'मैं' आज यह बात बिना पूछे खुले मन से तुम्हें बता रही हूँ।

किंतु इसमें विचित्र कुछ भी नहीं है, माधवी ! बता ... और क्योंकि इसमें मेरे प्रति की गयी तुम्हारी भविष्यवाणी ... जा रही है। सो तुम्हारी ही प्रसन्नता के लिए कहना आवश्यक था।

एक बात और भी है। राजन से जब तुम्हारा संबंध तय होने को था तब तुमने मेरे परामर्श को सर्वोपरि रखा। अपने लिए मेरे चयन के प्रति तुम्हारी इतनी आस्था थी। अब वही आस्था अपने लिए तुम्हारी चयन-क्षमता के प्रति व्यक्त कर रही हूँ। तुम्हें परामर्श देना ही होगा।

जो कुछ भी मैंने अब तक कहा है न, उसमें पहेली जैसा कुछ भी तो नहीं, माधवी ! फिर भी सरल भाव में कहूँ तो आसानी से समझ सकोगी।

याद होगा तुम्हें मैंने कहा था 'यदि कभी किसी ने मुझे आकर्षित किया तो उसकी अवमानना नहीं करूँगी। तुमसे छिपाऊँगी भी नहीं।'

बस, कुछ ऐसी ही बात है।

आशुतोष के प्रति मेरी चरम विरक्ति का कोई कारण तुम्हारी समझ में नहीं आया था। माँ भी नहीं समझ पायी। तुमने तो फिर किसी-न किसी काल्पनिक स्थिति की अवधारणा कर मन को समझा लिया होगा पर वह कदाचित एसा कर पाने में भी सफल नहीं हुई थी। फिर भी मेरे समाधान पर वे काफी सहज हुई ! मैंने उनसे कहा था 'आशु को मैंने आज तक भाई के स्थान पर ही रखा है। अब उसी से रिश्ते की बात सुनकर भी मुझे जाने कैसा लगता है मां !' फिर भी मेरे संबंध में माँ की चिंताओं का अंत नहीं। एक उपकार मुझ पर उन्होंने यह भी किया है कि मेरे किसी भी पथ का अवरोध नहीं किया। जिस पथ पर चलना आरंभ किया था उस पथ पर मैं चली ही नहीं बल्कि दौड़ पड़ी। कह देती हूँ कि यह दौड़ अब कभी समाप्त नहीं होगी !

इसी दौड़ में चलते चलते धीरे धीरे समझ रही हूँ कि जीवन की अवस्थिति किस किस रूप में है ! दुख, कष्ट निर्धनता का निकटतम साक्षात्कार मुझे अब हो रहा है। इन सब का आकंठ भोग रहे जन के बीच काम करना मुझे मुक्ति का सोपान नजर आता है। असाक्षरता व अशिक्षा का क्षेत्र ही मैंने अपने लिए चुना है। आरंभ में तो प्रातः निकल कर सांझ तक घर लौट आया करती पर फिर धीरे धीरे कभी निकट के उस देहाती क्षेत्र में एक दो रोज रह भी जाने लगी जहां वृद्ध ग्राम प्रधान के प्रति एक अनजान ममता से सराबोर हो गयी हूँ।

आशुतोष इस बीच दो बार मुझ से मिल चुके हैं। उस से पूर्व यदि

उन्होंने कभी भेंट करना चाहा होता तो मैं कदाचित अस्वीकार कर देती। पर इधर मुझ मे एक नये आत्मविश्वास का उदय हुआ है। वाणी का उपयोग कुछ-कुछ आया है मुझे। निःसंदेह वे विवाह का प्रस्ताव ही रखना चाहते होंगे। मुझे पता है कि वे और कही भी विवाह के नाम पर कतराते हैं। पर फिर भी निष्ठुर हो गयी। सच मानो माधवी यह निष्ठुरता मेरी आतरिक विवशता है। इसके अतिरिक्त और कुछ नही कह सकती।

जिन वृद्ध ग्राम प्रधान का उल्लेख मैंने अभी किया उनकी पत्नी से मुझे बहुत प्यार मिलता है। उन सबकी सरल हृदयता ही कहूँगी कि वे मुझे किसी देवी की-सी दृष्टि से ही देखते हैं। अपने यज्ञ की शुरुआत मैंने उन्ही के परिवार से की थी। फिर तो उनका जैसा सहयोग मिला वैसा इस राजनैतिक आपाधापी के युग मे राजकीय स्तर पर कभी सभव ही न हो पाता। इस थोड़े से अंतराल में ही दो ग्रामों में प्राथमिक स्तर के शिक्षा संस्थान आरंभ कर पाने में सफल हो गयी हूँ। इन ग्राम प्रधान का नाम है श्री नागेश्वर तिवारी। स्वयं पढे लिखे नहीं हैं पर शिक्षा के महत्व से अपरिचित नहीं। एकमात्र पुत्र किसी छोटी सी बीमारी मे ही अकाल काल कवलित हो गया था। अब घर में पत्नी के अतिरिक्त पुत्र वधू और दो नाती हैं। बस उन्ही का मुह देखकर जीवित हैं। या मन से वे पूर्णतया वीतराग हो चुके हैं।

यह गाव विशेष बडा नही है, माधवी। लगभग सौ घर होंगे। इस आबादी के लिए एक भी शिक्षा संस्था उपलब्ध नही थी। इसीलिए यहीं से आरंभ करना मैंने श्रेष्ठ समझा।

जिस दिन इन्ही के साथ लगते दूसरे गाव में पाठशाला का उद्घाटन किया गया बस उसी दिन कमल से प्रथम साक्षात हुआ था।

और तेरी भविष्यवाणी सच हो गयी।

मुग्धा की सीमा मैं कब की लाघ चुकी हूँ किन्तु समूची व्यस्तता के बावजूद दृष्टि बार बार उनकी ओर उठ जाती। वे भी संभवत मुझे ही एकटक निहार रहे थे। उनकी उपस्थिति का प्रयोजन मैं जान नही पायी। प्रचार तंत्र से दूर रहकर ही उद्घाटन के अत्यंत सादे से समारोह का आयोजन किया गया था। इस कार्य के लिए नागेश्वर बाबा ही सर्वाधिक

उपयुक्त लगे। यह गाव अपेक्षाकृत बडा है और ऐसी पर्याप्त भूमि यहा है जो अभी तक जोत में शामिल नही हुई। वैज्ञानिक साधनो के अभाव में बजर समझी जा कर अहिल्या सी तिरस्कृत पडी रही है। बाद में मालूम हुआ कि उसी भूमि को क्रय करने के उद्देश्य से उसे देखने कमल उसी दिन वहा आये थे कि उस उदघाटन समारोह में भी सम्मिलित हो गये।

कभी-कभी स्थितिया कितना शीघ्र और किस किस रूप में परिवर्तित हो जाती है माधवी, सोचकर आश्चर्यचकित हुए बिना रहा नही जाता। मुझे ही देख ले न ! जो कभी कहा करती थी कि उसे कभी कोई पुरुष आकर्षित नही कर पायेगा उसी के साथ भाग्य ने कैसा शिष्ट परिहास किया है ! अब तो कहने में भी तनिक सकोच नही होता कि पहली दृष्टि में ही कमल ने मुझे मन की प्रत्येक सतह का भेदन कर प्रभावित किया था। जब जब उन पर दृष्टि गयी तब तब लगा कि मुझे कोई मुझमें ही छीन लिये जा रहा है। स्पष्ट रूप में मुझे लगा कि कमल ही मेरे अपूर्ण आत्म का पूरक अश है।

उदघाटन समारोह के दौरान कमल ने पाठशाला के भवन निर्माण के लिए अच्छी खासी धनराशि के सहयोग की भी घोषणा कर दी। तभी उनके नाम से भी परिचित हो पायी।

फिर जाने कब मैं उस राह पर चल निकली जिसे सदैव अस्वीकार करती रही हूँ। वे सहृदय है उदार है और सबसे बढकर मेरे प्रिया कलापो के प्रति उनका मानसिक समर्थन है।

विस्तार से और अधिक कुछ नही कह पाऊँगी। चाहती हूँ कि तुम स्वय आओ और देखो परखो। फिर जैसा तुम परामर्श दोगी वैसा करूँगी। यदि तुम्हारा समर्थन प्राप्त हो गया तो ।

अब आगे कुछ कहा नही जायेगा माधवी ! राज और परिवार में अन्य सभी को मेरा नमस्कार कहना।

पहले पत्र और फिर शीघ्र ही तुम्हारे आगमन की, प्रतीक्षा में ।

कचन के आगमन की प्रतीक्षा को समर्पित उन क्षणो में कुछ दिन मैं इस पत्र के समूचे कथ्य को मन ही मन दुहरा गयी थी। यह पत्र मैंने राजन को भी

दिखाया था। अपने मौखिक रखांकना के माध्यम से अब तक कंचन का जो परिचय मैंने उन्हें दिया था, उनमें कंचन के जीवन के प्रति उनकी जिज्ञासा भी परवान चढी थी। मैंने उनसे कंचन के पास जाने की अनुमति चाही जो तुरंत ही प्राप्त भी हो गयी।

सब याद है मुझे। विस्मरण के योग्य व क्षण नहीं। एक मुरझाई कली का मैंने नये सिरे से कुसुमित होने की प्रक्रिया से गुजरते देखा था। उसके प्रति चाची जी की धारणाएँ भी कुछ परिवर्तित हुई थी। चाचा जी को बेटी के प्रति गर्व की अनुभूति होने लगी थी। कदाचित इसलिए कि एकाध प्रांतीय समाचार पत्रों ने कंचन के समस्त कार्य कलापों की प्रशस्ति में कालम रँगे थे और समाज सेवा के क्षेत्र में वह आसपास के इलाके में चर्चा का विषय बन गयी थी।

मुझे वह पहले से भी कुछ दुबली नजर आयी, किंतु उसके नेत्रों ने अभूतपूर्व सम्मोहन में कुछ न कुछ सिद्धि अवश्य प्राप्त की थी। आकृति की निर्मल तेजस्विता में एक नयापन था। मैं देखती ही रह गयी।

उन देहाती क्षेत्रों में भी मैंने उसके साथ भ्रमण किया। उसकी उपलब्धियों को प्रत्यक्ष देखकर लगा कि इस लडकी के भीतर सृजन की विराट संभावनाएँ लहरा रही हैं। इसने अपनी क्षमताओं का बिलकुल सही आकलन किया है। कहीं जरा सी भी चूक नहीं।

नागेश्वर बाबा से मिली तो पत्र में उनके संबंध में लिखी कंचन की एक एक पंक्ति स्मृति में कौंध गयी। वे बिलकुल वैसे ही थे। उनके परिवार में कंचन का बिलकुल वैसा ही सम्मान था जैसा उसने पत्र में लिखा था। मुझे सुखद ईर्ष्या हुई। सखी के उस गौरव को देखकर मन-ही-मन स्वयं को भी कुछ कम गौरवान्वित अनुभव नहीं किया।

गाँव के सीवाने की बगल से अरण्यानी से होता हुआ जो मार्ग गाँव तक जाता है उसी पगडंडी पर चलते हुए कमल से प्रथम परिचय हुआ था। वह कंचन से ही भेंट करने वहाँ पहुँचा था। राह में ही भेंट हो गयी। देखते ही मुझे भी लगा था कि यह युवक यदि कंचन के मनोरूप है तो आश्चर्य की बात नहीं। मनोनुरूप न होता तो यही आश्चर्य की बात होती। मैं समझ गयी कि वह स्वयं भी महत्त्वाकांक्षी है पर उसकी दिशाएँ दूसरी

है। फिर भी व परस्पर पूरक हाग। टकराव की सभावनाएँ नही।

लेकिन तब क्या पता था कि टकराव की सभावनाएँ कहाँ कहा छिपी रहा करती ह जा अवसर पात ही भयावह रूप से डॅस लेती है और उनका विष कस जीवन म घुल मिलकर जीवित रहना भी दूभर कर दता है और मरन भी नही दता !

कचन के सदभ म भी यही तो हुआ। इस प्रसग का भी बीच-बीच म मैंने उठाया है। आगे भी आयेगा। किंतु पहल उनके विचार का प्रसग ही पूरा करूँगी।

ग्रामीण क्षेत्रा का दौरा कर और कमल से भेंट कर जब मैं घर लौटी तो सीधी चाची जी क पास पहुँची। मा और चाची जी मरे अकस्मात पहुँचने पर शुरू म आश्चयचकित तो हुइ थी। कदाचित उ ह लगा हो कि ससुराल म कुछ अघटित घट गया है। यही आश्चय बाद मे प्रसन्नता म परिवर्तित हो गया जब मैंन बताया कि सब कुशल है। या ही कचन स, आप सबस मिलने का मन हुआ सा चली आयी। पर उस दिन गाव स लौटकर मैं बहुत उत्साह म थी। बहुत उत्तेजना की सी स्थिति म म चाची जी से लिपट गयी और कहा लाओ, अब मुह मीठा कराओ।'

उन्ह विस्मय हुआ किस बात की मिठाई र ?'

मैंने कहा कुछ बात है तभी ता। मिठाई खिलाए तो बताऊँ।'

उनका विस्मय और बढ गया। व जिनासु हा आयी और कहा, ' पहल बात ता सुनू कि क्या है ?

' अच्छी बात। पर पहले मिठाइ का वायदा करो।

उन्होंने हामी भर दी। मैंने उनक कान क पास अपना मुह ल जाकर धीरे धीर गुरुमत्र फूक दिया, कचन न विवाह क लिए हामी भर दी है।

सच ! उन्ह एकाएक जस विश्वास नहीं हुआ।

मैंन जोर दकर कहा हाँ बिलकुल सच। सौगध ले ला चाह।"

व प्रफुल्लित हा आयी। पूछा क्या आशुतोष म र !

मैं हतप्रभ हुई। चाची अभी तक उस रिश्त का मन स निकाल नहीं पायी। उसी की आशा म बठी ह। तीर-सा मर मह स छूटा "नहा चाची, आशुतोष स नही।

तो फिर ? उन्हें विश्वास नहीं हुआ, बल्कि व चौंक भी गयी।

मैंने बताया 'कमल बहुत अच्छा युवक है। और कचन को पसद है।'

चाची जी ने एक दीर्घ निश्वास ली।

बात नहीं कि इस बात की उन पर भीतरी प्रतिक्रिया क्या रही होगी, पर उस एक दीर्घ निश्वास के बाद व बिलकुल शात नजर आयीं।

बात चाचा जी तक पहुँची तो उन्होंने इसे बड़े सहज भाव से लिया। कमल की माता से बातचीत कर रिश्ता भी तय कर लिया। उड़ते उड़ते यह बात भी मालूम हुई कि कचन की भावी सास ने इस रिश्ते पर अपार प्रसन्नता व्यक्त की थी, क्योंकि इससे पूर्व कमल किसी भी तरह विवाह के लिए राजी ही नहीं होता था। यहा तक कि उन्होंने विवाह भी जल्दी ही माग लिया।

मैंने दिल्ली लौट आना उचित नहीं समझा। राजन को सूचना दे दी थी अपने निर्णय की।

तिलक की रस्म शीघ्र ही सपन्न हो गयी। विवाह के लिए भी निकटतम तिथि निश्चित कर ली गयी। कुल मिलाकर एक पखवारे में ही सब-कुछ सपन्न हो जाना था। इसीलिए सोचा था कि इस यज्ञ की पूर्णाहुति के बाद ही दिल्ली लौटूगी।

बड़े जोर शोर से विवाह की तयारिया शुरु हो गयी।

मैंने मन ही मन निर्णय लिया था कि कचन के विवाह पर खूब गाऊँगी। उसे कोई मलाल न रहने पाये। वैसा ही मैंने किया भी। राजन भी विवाह में सम्मिलित हुए थे। दुल्हन बनी कचन को विदा कर दो चार रोज़ बाद ही हम लौट आये।

अब मैं निश्चित थी।

कहते है कि कन्या मा बाप पर बोझ होती है। किंतु यदि गहराई से विश्लेषण करें तो स्पष्ट नज़र आयेगा कि वस्तुत ऐसा नहीं है। हमारी सामाजिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी ही है कि ऐसा लगता है और बोझ न होते हुए भी जवान बेटी परिवार पर बोझस्वरूप लगने लगती है। समाज की उस प्रश्नवाचक दृष्टि से बचने के लिए भी माता पिता की चिंता को अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता।

और चाची भी अब सचमुच चिंता से मुक्त हुई थी। आशुतोष के प्रति उनका आग्रह अवश्य था, पर उन्होंने उसे कचन पर लादा नहीं। उसी की इच्छा को प्रमुखता देते हुए सभी काम सपन्न किये। बस कमल भी उन्हें उन्नीस कहीं से नही लगा था। उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि भी उन्हें अपने स्तर के अनुकूल ही लगी थी। और मैं इसलिए भी प्रसन्न थी कि मेरी भविष्यवाणी शत प्रतिशत सत्य सिद्ध हुई और अततोगत्वा किसी पुरुष ने कचन को आकर्षित किया।

इसके बाद तमाम घटनाएँ मेरे अनजाने मे ही बडी तेजी से घटित होती चली गयी। मुझे ही क्या शुरू-शुरू में किसी को भी किसी बात की कानोकान खबर तक न हुई।

विवाह के बाद उसका जो प्रथम पत्र मुझे मिला, वहां तक तो सब कुशल ही थी। बाद के जितने भी पत्र मुझे मिले, उन सब में कचन की मानसिक उथल-पुथल स्पष्ट रूप से अभिव्यजित होती रही। अपनी ओर से वैसी कोई बात उसने भले कभी नही लिखी, पर पत्र लिखने में, विशेष रूप से किसी अतरग मित्र को पत्र लिखने मे पत्र लेखक की मग्नता का जो भाव सहज उभरता है कचन के पत्रों मे उस मग्नता का अभाव निरतर वर्द्धिगत होता रहा। वैसे लिखती तो वह गयी रही कि—सब कुशल है, जीवन मजे मे व्यतीत हो रहा है आदि। वही आत्मगोपन की प्रवृत्ति। सब कुछ चुपचाप सहन करते चले जाने का अभ्यास।

"रहिमन निज मन की व्यथा
मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलहैं लोग सब
बाँटि न लहै कोय॥"

अब्दुल खानखाना रहीम के इस कटु अनुभव को नकार पाने की क्षमता मुझ मे नही, किंतु कचन यदि खुलकर मुझ से सब कुछ कहती तो क्या मै भी इठलाती? मन सहमति नही देता।

फिर एक लबे अतराल के बाद उसका पत्र आया जिसमे सूचित किया गया था कि वह माँ के पास लौट आयी है। कब तक वहाँ रहेगी, ठीक से कुछ कह नही सकती। ससुराल भी लौट सकती है और यह भी सभव है कि

आजीवन मा क पास ही रह जाय और उस अधूरे काय की पूर्ति म सलग्न हो जाये जिसे उसने ग्रामीण अचल म प्रारभ किया था।

मेरे लिए यह नयी जानकारी थी। कचन के किसी अशुभ की आशका मुझे बुरी तरह विचलित कर गयी। इस अभागी का जन्म क्या जीवन भर जलते रहने के लिए ही हुआ है? कचन के कचन स देह मन प्राण क्या इसी प्रकार सदव किसी अदश्य आग मे जलते ही रहग? सुख चन की जिंदगी क्या वह कभी नही जी सकेगी? आखिर विधाता का क्या बिगाडा है उसने? सुख की मुट्ठी भर छाह जीवन म यदि आयी भी तो क्षण भर भी टिकी नहीं! विवाह क बाद यदि लड़की आजीवन मायके म रहने का निणय लती है तो उसके पीछे किन परिस्थितियो का हाथ हो सकता है, यह सहज ही जाना जा सकता है।

तो क्या कचन भी किसी ऐसी ही परिस्थिति की शिकार है अथवा उसकी कोई अपनी ही सिद्धात चेतना आडे आकर उस या नचा रही है?

यह सब जान पान का कोइ साधन मेरे पास नही था। जान पाये बिना मुझे चैन भी नही था।

अपनी व्यथा राजन क समक्ष रखी। उन्हाने मुसकरा कर टाल जाना चाहा, कहा 'दखता हूँ कि तुम्हारी यह कचन मेरे लिए अच्छी-खासी प्रतिद्वद्वी बन उठी है!

लकिन शीघ्र ही गभीर भी हो गय। पूछा, जाना चाहती हो उसके पास?'

मैंने तुरत हामी भरी।

उन्हाने नया सुझाव दिया, 'क्या यह जरूरी है कि तुम्ही जाओ? उसे भी तो यहा बुलाया जा सकता है। तुम्हारी एकमात्र सखी और बहिन वही है! क्या उसका आगमन असगत होगा?"

राजन की बात ही मुझे भी उचित लगी। कचन यहा कभी नही आयी थी। उस आना ही चाहिए! वास्तविकता का पता तो चलेगा ही, उसका मन भी बहलेगा। और इस बीच यदि ठीक स स्थितियो का ज्ञान हो जाय तो सर्वोत्तम! समस्याएँ होती ह—ठीक है, पर उनका कोई समाधान भी तो होता होगा!

पत्रोत्तर में मैंने कंचन को लिखा कि वह तुरंत चली आय। अकेली आने में यदि कोई असमंजस हो तो चाचा जी से कहा कि तुम्हें छोड़ जायें।

इसके साथ ही अलग से एक पत्र चाची जी को भी लिख दिया कि वे कंचन को अवश्य भेज दें। अकेले मन नहीं लगता और उसे देखे भी काफी समय गुजर चुका है। कम से-कम एक बार तो मेरे यहाँ उसे आकर रहना ही चाहिए।

कंचन आयगी, इस बात की सिर्फ धुंधली सी आशा मेरे मन में थी। समग्रत यही विचार प्रबल हो पाया था कि वह नहीं आयगी और कोई-न कोई बहाना बनाकर मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर देगी। उसके प्रति ऐसी धारणा बना लेना निर्मूल भी नहीं।

मगर मेरी समस्त धारणा निर्मूल हो गयी वह अकेली ही आ पहुँची!

उसे देखा तो मैं धक से रह गयी। आँखों में वही दृढ़ संकल्प, पर शरीर में मानो अंदर से घुन लग गया हो!

उसे स्नेह से बाहुपाश में लेते हुए पूछा, "आने की खबर क्यों नहीं दी? घर खोजने में अकेले आने में असुविधा तो नहीं हुई?"

उसके उत्तर ने मुझे आहत कर दिया। बोली, 'असुविधा कैसी? यह सब तो मन का विकार ही है, अब न मुझे भय है न असुविधा। इसी में उलझ कर रह गयी तो जीना ही व्यर्थ हो जायगा! भय के चिह्न अब मेरी गतिविधियों का संचालन नहीं कर सकते। एकनिष्ठ हो अपने कर्त्तव्यों को मैं निःसंकोच निभाये जाऊँगी!'

मुझे अनुभूति हुई कि आते ही उसने दार्शनिक की बात आरंभ कर दी। मैंने वातावरण को बदलने के उद्देश्य से हँसते हुए कहा, 'तो मुझ से मिलने की इच्छा से नहीं बल्कि केवल मेरे बुलावे के कारण कर्त्तव्य पालन करने तू यहाँ चली आयी है!" उत्तर में अपने को संयत करती हुई बोली 'माधवी! जो भी समझ लो। मगर कर्त्तव्य और इच्छा के बीच की विभाजक रेखा मैंने मिटा दी है। तभी तो इस मँझधार में भी जीवन-तरी खे सकती हूँ! कर्त्तव्य और इच्छा का मिलन ही आनंद का हेतु बन सकता है!

बचन ने ठीक ही कहा था। कर्त्तव्य और इच्छा का सामंजस्य ही आनन्द का हेतु बन सकता है। इसी समन्वय के अभाव में आज विश्व का अधिकांश, मरीचिकाओं के पीछे भागता रहता है और हताश होकर टूट-बिखर जाता है। इसीलिए तो आपाधापी का साम्राज्य विस्तृत हुआ है। प्रलयकारी संकट की नंगी तलवार सब समय सिर पर लटकती अनुभव होती है। व्यष्टि और समष्टि जीवन का यही सत्य आज मुंह बाये प्रश्न मुद्रा में सामने खड़ा है। ये तमाम बातें मैं आज लिखते हुए सोच रही हूँ। पर उस दिन भी बचन के कथन से मुझे असहमति नहीं थी। एक लंबी दूरी तय करने के बाद वह इस निर्णय तक पहुंची थी। स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ ही इस मान्यता के रूप में प्रत्यक्ष हुआ होगा। इसीलिए मानना पड़ता है कि दुख व्यक्ति को ताड़ता ही नहीं—मांजता भी है। उसे चिंतक भी बना देता है। जैसे कोई अनगढ़ पत्थर लुढ़कता घिसटता हुआ शालिग्राम की बटिया में परिवर्तित हो जाये—परमादरणीय, वरेण्य।

मेरी दृष्टि में भी बचन के प्रति आदर का भाव उमड़ा। फिर भी मित्रता के उसी चिर स्नेहाधिकार से कहा, 'अच्छा तब रत्न महाशया! हम अपनी पराजय स्वीकारते हैं।'

बचन ने कुछ और नहीं कहने दिया और खिलखिला कर हँसने के प्रयत्न में गंभीर हो गयी। ऐसे में मुसकान नाम का जो भाव उसके अधरों पर उभरा उसे मुसकान कहना अनुचित होगा। वह था पीड़ा की अदृश्य रेखाओं का वाह्याभास। मन पर पड़ी दरारों की प्रतिच्छवि। व्यक्तित्व को दो टूक करती हुई विभाजक रेखा।

तब वह मेरे पास दो सप्ताह रह गयी थी। उसके पत्र का उल्लेख करते हुए मैंने पूछा था 'यह आजीवन माँ-बाप के यहां रहने का तुम्हारा निर्णय क्या है? जरा विस्तार से नहीं बताओगी? मुझे तो यह बात तनिक भी पल्ले नहीं पड़ी।'

बचन ने कहा 'मैंने ऐसा कब लिखा?'

''लिखा था, तभी तो पूछ रही हूँ।'

'किन्तु यह भी तो लिखा था कि लौट कर जा भी सकती हूं! हाँ अभी, उस बात की सभी संभावनाएँ धूमिल नजर आती हैं?

आखिर क्या ? क्या कमल ने तुम्हारा परित्याग कर दिया है ?"

"ठीक-ठीक ऐसा भी तो नहीं है माधवी। यदि यही होता तो इतना वेदना क्या होती ? तू क्या समझती है कि वे मेरा परित्याग कर पायेंगे ?"

तो फिर परित्यक्ता की सी यह व्यथा ? ऐसा अटपटा निर्णय ? तो यह सब क्या है ?

'क्यों ? इसमें ऐसी उलझन क्या है जो समझ में न आये ! बस इतनी सी ही तो बात है कि उन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया।" मुझ पर एकाएक जैसे वज्र गिरा ! अत्यन्त आग्रहपूर्वक जिसे अपनाया हो, उसे भी भला कोई अस्वीकार कर सकता है ? किन्तु यही तो सुन रही थी !

मैंने पूछा, आखिर कुछ-न-कुछ कारण भी तो होगा इस अस्वीकृति के पीछे ? कैसा पुरुष है जो तुम्हें अस्वीकार कर सका ! यही सब करना था तो अपनाने का इतना आग्रह क्या प्रदर्शित किया ? आखिर क्या आवश्यकता थी उतने बड़े ढोंग की ? सुमन कुछ पूछा तो होता !

मेरा आक्रोश तीव्रतर होता आ रहा था। मैं सुलग उठी थी। पर उस उबाल पर कंचन ने पानी छिड़क दिया। एकदम ठंडा स्वर, नहीं माधवी, उनमें कहीं कोई दुर्भावना नहीं थी ! जो कुछ था—अंतर की निर्मल अभिव्यक्ति ही थी। उन्होंने मुझे कभी अस्वीकार नहीं किया। हाँ इतना अवश्य है कि स्वीकार भी नहीं कर पाये !"

परस्पर विरोधी उसके इन कथनों का आपस में कोई तालमेल मैं नहीं सोच पायी मेरा असमंजस उसने पढ़ लिया। तभी कहा, "मैं तुझे कारण बताती हूँ, माधवी !"

मैं उत्सुक हो उसे देखने लगी।

उसने बताया 'डाह जानती है न ? स्त्री में ही नहीं, पुरुष में भी होती है। बस उसी का प्रतिफलन समझ इसे।'

'डाह ! मैं अचम्भित हुई। 'पर तेरे जीवन में ऐसा क्या है ? एक निर्मूल संदेह के आधार पर कमल ने तेरे साथ इतना बड़ा अन्याय कर डाला !"

उसकी मुख मुद्रा पहले सी ही सौम्य रही ! बल्कि इस बार उसने तनिक खुलेपन से ही कहा उनकी धारणा निर्मूल है यह तुझे किसने कहा ?

मैं जैसे आसमान से गिरी। बड़ी विचित्र बात वह कह रही थी। मेरे लिए तो इसकी कल्पना भी सभव नहीं थी!

कह कर वह स्वय भी अत्यधिक भावक हो आयी। मुझसे फिर कहा, आज तुझे सब कुछ बता दूगी, माधवी! कुछ भी नहीं छिपाऊँगी। तुम किसी बात का अन्यथा मत लेना। सुनकर मेरे प्रति अपने स्नेह को कम मत होने देना। किशोर वय से लेकर आज पयत जिस बाग्न का भीतर दबाये तडपती रही हूँ उसकी एक झलक मात्र से कमल टूट गये तो जान तुम पर भी क्या कुछ नहीं गुजरेगी! फिर भी तुम स्वय निणय करना कि मैं इसमे कहा तक अपराधिनी हूँ? क्या मेरा कलुष सिर्फ मेरा है?

हवा मे ठडक के बावजूद मेरे माथ पर पसीने की बूँदें उभर आयी।

कनन जड स्तब्ध, पत्थर का बुत बनी बैठी थी। उसके अधर फडके तो लगा कि अभी उसमे जीवन का स्पन्दन है। फिर उसने बोलना शुरू किया तो मेरी प्रतिक्रियाएँ जाने बिना ही बोलती चली गयी।

राजापुर के मेले के उस भटकाव के उन समस्त करुण क्षणो का रहस्य उसी दिन मेरे सामने प्रथम बार खुला। यह जान लेने पर उसकी जडता के व तमाम रहस्य भी स्वत खुलते चले गये, जिनकी साक्षी मैं स्वय भी रही हूँ। आशुतोष से विवाह के प्रस्ताव के प्रति उसकी चरम विरक्ति का कारण मैं तभी समझ पायी थी। अपनी प्रबल दृढ सकल्प शक्ति के आधार पर ही वह उस टूटन और बिखराव को झेल सकी होगी। और उस दारुण काड के बावजूद आशुतोष के प्रति उसकी करुणा का वह रूप मुझे सचमुच उसके अनूठे व्यक्तित्व के दर्शन करा गया। मेरे एक प्रश्न के उत्तर मे उसने कहा था 'क्या बतलाती रे तुझे, अपने कलक की कथा? सुनकर तुझे क्या सुख मिलता? मेरी तरह तुम्हारे मन मे भी आशुतोष की कैसी छवि अकित होती? बोल तो! मुझे पता है, मेरी ही तरह वह भी जले है। पश्चाताप की आग मे निरतर झुलसते रहे है। तुझे यदि बताती तो तुम्हारी भी उपेक्षा का पात्र बनकर वह और उद्विग्न होते। उनकी जलन द्विगुणित हो आती। किसी एक क्षण के भटकाव का इतना बडा दड उन्हे झेलते देखकर मेरी आत्मग्लानि को और प्रश्रय मिलता। यह भी क्या उचित होता?'

स्पष्टवादिता क्षमा करुणा आदि भावनाओं का सौदय की

म उकेरा गया उसका रूप, मैं निहारती रही। पर कचन के मन की थाह नहीं ले पायी।

इसके बाद अपनी भविष्यवाणी के प्रतिफलित होने, यानी कचन कमल के प्रणय से परिणय तक की गाथा से मेरा अपरिचय नहीं। और अब कचन परित्यक्ता प्राय सी मेरे समक्ष विराजमान थी। बस, इसी प्रसग को पुन उठाते हुए बडे नप-तुले शब्दो म कचन ने बताया—

'तुमसे वायदा किया था न माधवी कि जिसे तू पलायन का पथ कहती है उस पर चलते हुए यदि कभी किसी न मुझे आकर्षित किया तो उसकी अवमानना नही करूँगी। तुझसे छिपाऊँगी भी नही।

'मैंने बिलकुल भी नही छिपाया। कमल न मानो किसी सम्मोहन स मेरी दृष्टि को बाँध दिया था। उसके आह्वान की उपेक्षा मैं नहीं कर पायी। उसके सामीप्य से मेरे भीतर एक विचित्र-सी खलबली मच जाया करती। मेरा निर्णय डगमगाने लगा। समर्पण का एक दुर्दमनीय ज्वार मेरे अतर म उठता और मेरा सपूर्ण व्यक्तित्व उसम समा जाता! देह से परे जसे मैं अशरीरी हो उठती—अमूर्त! सिर्फ भावना और भावना। मात्र समर्पण!

"सयम की जो लक्ष्मण रेखाएँ मैंने अपने लिए स्वय उकेरी थी व इस भयानक मानसिक तूफान म धुल-पुछ चली। तिस पर भी अभी मैं अपने लिए अपने ही द्वारा निर्धारित वर्जनाओ के घेरो म दुबकी बैठी रही। मेरे मन के द्वार पर कमल बार-बार दस्तक देते, पर मैं भीतर सिकुडी-सिमटी मूक पडी रही। स्त्री-पुरुष के जीवन का वह गर्हित प्रसग जिस रूप म मेरे जीवन म आया था, उससे उत्पन्न विरक्ति को मैं अभी नि शेष नही कर पायी थी। वह बार-बार सिर उठाता रहा।

'एक दिन कमल ने मुझसे विवाह का प्रस्ताव कर ही दिया। अपने ही भीतर के चोर के भय से मैं सकुचित हो आयी। सकोच इसलिए भी हुआ कि चोरी कही पकड न ली जाये! व्यक्त म मैंने पूछा, 'मेरे जीवन के सबध म अभी आप जानते ही क्या हैं?

कमल हँसे और कहा था तुम्हे देख लेने के बाद अब जानने को और बचा भी क्या है? आखिर क्या जानना चाहती हो?

'मैंने कहा यही मेरी पृष्ठभूमि, मेरा अतीत।'

तब जानती हो, क्या कहा था? कहा था, 'अतीत मर चुका है! मैं सिर्फ वर्तमान को देख रहा हूँ। उसी के आधार पर एक सुखद भविष्य की कल्पना भी करता हूँ। तुम्हारा कार्यक्षेत्र ही क्या तुम्हारी पृष्ठभूमि नहीं? अतीत से मुझे क्या लेना?

''वर्तमान क्या अतीत से भी प्रभावित नहीं होता? उसी अतीत की नींव पर ही तो मेरा वर्तमान अवस्थित है! संभव है, यह वर्तमान देखने में भव्य लगता हो लेकिन नींव की सुदृढ़ता भी तो परख लेनी चाहिए। कालान्तर में पश्चाताप तो नहीं रहेगा। इसीलिए मैं चाहती हूँ कि ।'

'कमल ने मेरे मुँह पर हाथ रख दिया। वह जैसे कुछ सुनना ही नहीं चाहता था। मेरे किसी संभावित विरोध की कल्पना मात्र ही उसे विचलित कर देती थी। वह बार बार यही तर्क दुहरा देता कि मेरे अतीत से उसे कोई प्रयोजन नहीं। उसके कथन का अभिप्राय यह भी हुआ करता कि मुझे देखकर ही प्रथम बार उसने घर संसार की कल्पना की है। अनेक युवतियां उसके जीवन में आयी हैं जिन्हें देखने समझने का भरपूर अवसर उसे प्राप्त हुआ है। लेकिन उनमें से कोई भी उसमें कामना का संचार नहीं कर पायी। मन पर कोई स्पष्ट छाप नहीं छोड़ पायी। उनका यथासंभव सामीप्य उसके जीवन के लिए कोई अर्थ नहीं रखता रहा। जैसे यात्रा में अनेक अपरिचित मिलते हैं, दो चार कदम साथ चलकर अपने अपने मार्ग पर चल देते हैं। उनका बिछुड़ना पीड़ित नहीं करता। कोई व्यथा नहीं जगाता। बस, मुझे देखकर ही पहली बार उसके मन में एक अनोखी अनुभूति हुई है ।'

'सच कहती [illegible] माधवी अनुभूति मुझे भी हुई थी, पर मैं [illegible] दमन करती रही। यह और बात है कि [illegible] प्रकार से मुझे [illegible] नहीं मिली। जाने किस प्रकार से [illegible] मेरा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ऊष्मा को प्राप्त कर स्पन्दित हो उठा। [illegible] [illegible] [illegible] मैंने [illegible] [illegible] का स्वागत ही किया। बुद्धि की [illegible] का प्रश्न नहीं [illegible] थी। यही द्वन्द्व था। प्रेम के जिस [illegible] में [illegible] [illegible] कराया था उसके [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

चाहती रही कि कमल म विरक्त हो रहूँ। हो नहीं पायी। मेरे मन ने उन्हें स्वीकार कर लिया। तिस पर भी बुद्धि बार-बार सोचती रही कि यह भी कोई कमी ही क्षण तो नहीं जिसकी भरपाई आज तक भी नहीं चुका सकी हूँ।'

'इसीलिए तो तुम्हें बुलवा भेजा था उस बार। क्योंकि मैं चाहने लगी थी कि समर्पित हो जाऊँ। चाहने लगी थी कि जीवन के उस कलुषित क्षण को बिलकुल भुलाकर नये सिर से सब कुछ शुरू करूँ! तुमने भी जब समर्थन कर दिया तभी उस ओर प्रवृत्त हो सकी।'

वचन आप बीती सुना रही थी। उसके एक एक शब्द को मैंने ध्यान पूर्वक सुना। उनमें से उभरते हुए बिंबों को आत्मसात किया। इस प्रकार वचन की जो छवि अंकित हुई उसे लक्ष्य कर मन करुणा से भीग गया। मैं सिर्फ सुनना ही चाहती थी। फिर भी इस बार जिज्ञासा को रोक नहीं पायी। पूछ ही लिया तुम विवाह से पूर्व ही कमल को सब-कुछ बताकर भार मुक्त क्यों न हो रही? और यदि विवाह पूर्व नहीं बताया था तो बाद में बताने की ऐसी कौन-सी अपेक्षा अनुभव हुई थी? उस बात को पी जाती! ऐसा क्या सिर्फ तुम्हारे ही जीवन में घटित हुआ है! तुम भी तो जानती हो कि अनेक के जीवन में ऐसा हो जाता है। पर तुम्हारी तरह कोई आजीवन उस भार को ढोता नहीं रहता।"

उसने मेरी जिज्ञासा को सुना और छटपटा कर रह गयी। शब्दों को चबाते हुए धीरे धीरे बोली, 'तुम्हारा प्रश्न अस्वाभाविक नहीं है माधवी! फिर भी जरा सोचो कि क्या मैंने विवाह से पूर्व ही उन्हें सब कुछ बता न देना चाहा होगा! अवश्य चाहती थी। इसके लिए प्रयत्न भी किया था। किंतु उन्होंने अवसर ही नहीं दिया। जब जब कुछ कहने के लिए अधर फड़फड़ाए तब-तब विषयांतर उपस्थित हो गया। स्वयं से समझौता कर लेने के अतिरिक्त अन्य विकल्प ही क्या बचा? और तुम्हारा यह प्रश्न कि बाद में बता देने की ऐसी कौन सी अपेक्षा अनुभव हुई थी अथवा आजीवन उस भार को ढोने में क्या औचित्य है? इन प्रश्नों का उत्तर शब्द सापेक्ष नहीं। अपना-अपना चिंतन है। मेरा मन इस छल के लिए स्वयं को कभी प्रस्तुत नहीं कर पाया। हाँ मैं इसे छल ही मानती हूँ। जिसके साथ जीवन

भर का संबंध हो उससे छन मुझे नहीं सुहाया। सिर्फ इतना ही क्या, स्वयं के संबंध में उनकी स्वीकारोक्तियों ने भी मुझे प्रेरित किया कि इस सरल-हृदय व्यक्ति से कुछ भी गोपनीय नहीं रखना चाहिए। नतिक्ता संबंधी इस प्रकार के दुराग्रहों में ये निश्चित ही मुक्त होंगे। तब क्या पता था कि उनके लिए भी मेरी यह स्थिति असह्य हो उठेगी!

'मेरे विवाह वाले दिन तक का साक्षी तो तुम भी हो, माधवी! उसके बाद की स्थितियों से तुम अपरिचित ही रह गयी।'

विवाह के बाद के उन्हीं प्रसंगों पर प्रकाश डालते हुए कंचन कहे चली प्रारंभ में कुछ ही दिनों में मुझे ऐसा अनुभव होने लगा माधवी कि इस बार मैं छली नहीं गयी।

"पर अचानक एक दिन नये सिरे से मेरा कुछ उलझ गया! अनुभूति के कोमलतम क्षणों में एक दिन वे अत्यधिक भावुक हो आये। मुझसे कहा, विवाह पूर्व के अपने जीवन का कुछ आभास मैंने कराया था, लेकिन विस्तार से कभी कुछ नहीं बताया तुम्हें।

'मैंने कहा, लेकिन अब मुझे उस सबसे कोई प्रयोजन ही नहीं। हमने नये सिरे से जीवन आरंभ किया है! बस यही कामना है कि उसमें कभी कोई बाधा न आये!

'कमल ने कहा, 'फिर भी मैं सब कुछ विस्तार से बताकर बोझ हलका कर लेना चाहता हूँ।'

और माधवी अपनी बातचीत में उन्होंने स्वीकार किया कि किसी युवती से उनका घनिष्ठ संबंध भी रह चुका है! लेकिन वह संबंध सिर्फ ऊपरी धरातल तक ही सीमित रहा। उसमें प्रेम जैसी किसी भावना का कोई योग नहीं था!

'उनके इस प्रकार कह देने से मुझ पर अच्छा प्रभाव ही पड़ा। उत्तर में मैंने कहा, जो बीत गया गया, उस पर मुझे अब कोई दुख या क्षोभ नहीं। इस बात से आपके प्रति मेरे समर्पण में कोई कमी नहीं आ सकती। मैंने संपूर्ण हृदय से आपको अपनाया है! आप क्या मेरी परीक्षा लेना चाहते हैं?'

'कमल खिलखिला कर हँस पड़े, फिर एकाएक गंभीर हो गये।

'उनकी उदार स्पष्टवादिता सचमुच बडी सुखद लगी। ऐसे पुरुष से अपने संबंध में कुछ भी छिपाना अन्याय होगा। मैं तो विवाह से पूर्व ही बताना चाहती थी जिसका अवसर नहीं मिला।

मैंने कमल से कहा 'आपने तो सब कुछ बताकर अपना बोझ हलका कर लिया। एक बोझ मेरा भी है जिसे मैं उतारना चाहती हूँ। पहले भी कई बार प्रयत्न किया, पर आपने कहने नहीं दिया। अपने उस अतीत का उल्लेख किये बिना आज रह नहीं पाऊँगी।"

'कमल सिर्फ मुसकराये। कुछ सोचते हुए क्षण भर बाद ही बोले, मुझे तुम्हारे अतीत से कुछ प्रयोजन नहीं! तुम अब जो हो, बस वही रहो।

"फिर भी माधवी, मन जिद की और राजापुर वाले उस प्रसंग को दुहरा दिया। स्थान और व्यक्ति का उल्लेख तो नहीं किया, पर मूल बात व्यक्त कर ही दी। यह आशा भी मुझे अवश्य थी कि कमल का उदार व्यक्तित्व मुझे अवश्य ही क्षमा कर देगा।

पूरा विवरण जानकर कमल ने अपने कांपते हाथों से मेरे कंधे जकड़ लिये और मुँह को मेरे निकट लाते हुए धीमे लेकिन काँपते हुए स्वर में मानो गिड़गिड़ाये कह दो कि यह सब झूठ है कंचन, सिर्फ एक परिहास! कह दो कि ऐसा कभी नहीं हुआ!

उनकी इस कल्पना को समझते हुए भी मुझे आश्चर्य ही अधिक हुआ। विवाह से पूर्व मैंने जब-जब यह बात बतानी चाही तब-तब उन्होंने कहा कि मेरे अतीत से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं। अपने संबंध में सब कुछ बताकर भी मेरे जीवन में कुछ बसा उनसे सहन नहीं हो पा रहा था। मैं चाहती तो एक साधारण से छल का सहारा लेते हुए कह देती 'हाँ, यह सब झूठ है। आपकी परीक्षा लेने के लिए ऐसा कहा था। लेकिन माधवी, सन्देह की धुंधली छाया भी बड़ी भयानक होती है। जीवन की इतनी लंबी यात्रा में मेरा वह छल किसी भयंकर छलना का सृजन कर सकता था। इसीलिए स्थिति को स्वीकार करने में ही कल्याण समझा। कहा, 'जो सच है उसे झूठ कह देने भर से ही तो वह झूठ नहीं हो जाता। आप के साथ और प्यार के सम्बन्ध में अपने साथ भी छल क्या करूँ?

"कमल न दोनो हाथो से माथा थाम लिया। मुझे भी लगा कि नये जीवन की शुरुआत की ललक जिस क्षण म हुई थी, वही एक बार फिर चूक हो गयी। मन को सुदृढ बनाकर यदि मैं उसी समय सब कह देती तो इस स्थिति का सामना न करना होता। पर अब तो सब कुछ घटित हो चुका था। मेरा उत्तर सुनकर कमल एक झटके स उठ खडे हुए और मुट्ठिया भीचे टहलने लगे। जैसे स्वय से ही युद्ध रत हो। फिर भी लगा कि उनका वह अत सघर्ष समाप्त नही हुआ। लगा कि वे क्षण प्रतिक्षण और अधिक बेचैन होते चल जा रहे है। इसके बाद व दरवाजा खोल कर बाहर निकल गये। मैं घटो प्रतीक्षा करती रही। वे लौटे और निस्तेज चेहरा लिये औधे मुह बिस्तर पर गिर गये।

"मुझे लगा कि इस बार कमल न मेरे भाग्य का निर्णय किया हो।

महीनो यही स्थिति रही। एक कुलीन, सुसस्कृत और धनाढ्य परिवार म भी मैं निर्वासित और बहिष्कृत प्राणी की पीडा को मन पर झेलती रही। मेरे प्रति कमल की यह विरक्ति बहुत दिनो तक परिवार से छिपी न रह पायी। अब वे अधिकाश समय घर से बाहर ही व्यतीत करने लगे। उनकी माताजी न अथवा मैंने कभी पूछा तो कहा कि व्यावसायिक उलझनें बहुत बढ गयी हैं। लेकिन मा का यो भ्रम म रखना सभव नही था। वे उन्ही का मुह देखकर जीती थी। पति की मृत्यु के बाद अब वही उनका सर्वस्व था। उनकी अनुभवी आख को भुलावे मे रखा भी नही जा सकता था। मुझसे माताजी न जब-जब पूछा तब-तब मैंने हँसकर ही कहा कि नही, मेरे साथ तो ऐसा कुछ भी नहा है।

"और फिर एक दिन कमल न उनके सामने एक ऐसा प्रस्ताव रखा कि वे चौक गयी और वह प्रस्ताव कुछ इस ढग से रखा गया था कि वे अस्वीकार भी न कर सकी। मेरी स्वीकृति अस्वीकृति को कौन महत्व देता! कमल भ्रमणार्थ बाहर जाना चाहते थ। व्यवसाय का भी कुछ नया सिलसिला जमाने की बात उन्होने की थी। मै समझ गयी कि मेरी उपस्थिति से अब वे और अधिक असहज हो आते हैं। इसीलिए दूर जाना चाहते हैं। माताजी न कहा भी, 'बहू को भी साथ ले जा' किंतु वे टाल गये।

'जिस दिन उन्हें जाना था उसी दिन तनिक एकात पाकर मैंने उनसे

कहा 'आपके बाहर जाने का अर्थ मैं समझती हूँ। लेकिन यह पूछ सकती हूँ कि यह दंड क्या? किस अपराध का? अपनी उस स्थिति के लिए मेरा कोई दोष है या नहीं, इस विवाद में मैं नहीं पड़ना चाहती। और एक ही एक दोष से आप भी तो मुक्त नहीं। आपने स्वयं स्वीकार किया है। फिर मेरा ही कलंक अधिक महत्वपूर्ण क्यों?'

मेरे इस प्रश्न का कोई उत्तर वे नहीं दे पाये। बस आँख भर मुझे देखते रहे। मैंने आगे भी कहा क्या इसीलिए कि मैं औरत हूँ और आप पुरुष, जो समर्थ है। फिर भी एक बात कहती हूँ मुझे अंधकार के इस कगार पर छोड़कर आप विश्व के किसी भी कोने में चैन से रहने नहीं पायेंगे। आपके निर्णय की राह में मैं कोई व्यवधान नहीं बनना चाहती किंतु स्मरण रहे कि मेरे समर्पण में कहीं कोई दोष नहीं। मेरे लिए जो आदेश आप करेंगे मुझे शिरोधार्य होगा। यदि चाहें तो आपके जीवन से पूरी तरह निर्वासित हो जाऊँगी अथवा जीवन भर प्रतीक्षा करती रहूँगी। मेरा द्वार आपके लिए कभी बंद नहीं होगा।

'माधवी! मेरे कथन की उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई, ठीक से कहा नहीं जा सकती। इतना भर याद है उन्होंने कहा था, मैं कुछ ठीक से निर्णय नहीं ले पा रहा हूँ, कंचन! तुम्हारे प्रति कोई दुर्भावना भी मेरे मन में नहीं। मैं सिर्फ अपने अंतर्द्वंद्वों से मुक्ति पाना चाहता हूँ। जिस दिन मुक्ति पा लूंगा उसी दिन लौट आऊंगा।'

"और वे चले गये। उनके पत्र बराबर आते रहे पर मेरे नहीं माताजी के नाम। मुझे उनका कभी कोई पत्र नहीं मिला। माताजी पूछतीं तो मैं कहती 'हाँ, मुझे भी एक पत्र अलग से उन्होंने लिखा है।' जब जब उनके नाम पत्र आया और उन्होंने मुझे कुरेदा तो मैंने यही कहा कि हाँ, मुझे भी अलग से पत्र आया है।

'इस बीच मैंने अनेक पत्र उन्हें दिये जो सदैव अनुत्तरित रहे। मैंने उन पत्रों में उन्हें तरह-तरह से विश्वास दिलाना चाहा। उन्होंने एक बार जो मौन धारण किया था किये ही रहे।

'निश्चित ही माताजी हमारे परस्पर विग्रह-युक्त संबंधों को भाँप गयी होंगी। एक दिन उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा 'तो दोनों तरफ से नाम ....

उसका पत्र।'

'मुझे लगा कि अब बात बनाय बनेगी नहीं। हतप्रभ हो रही। लगा कि आखें अभी बरस पड़ेंगी। मेरी मुखमुद्रा देखकर उनकी भी आखो म आश्चय उभर आया। वहा मुझे शुरू मे ही शक था, वह। लेकिन कारण क्या है यही नही जान पायी हूँ! बटे की ही इच्छा के अनुसार बड़े चाव से तुझे बहू बनाकर लायी थी। इतनी जल्दी यह सब क्या हो गया, समझ मे नहीं आता। तुझे मेरी सौगंध है, सच-सच बताना। सच बात पता लगने पर ही तो कुछ किया जा सकता है।'

'माताजी के सबध मे तुझे क्या बताऊँ, माधवी! घर म रहते हुए भी निर्वासित म व समस्त क्षण मात्र उन्हीं के ममत्व की छाव म व्यतीत कर सकी हूँ। व ही क्या कम चिंतित हुई होंगी? समाज म जसा कि देखती हूँ, होना तो शायद वैसा ही चाहिए था लेकिन हुआ विपरीत। पुत्र मोहवश होकर व उस स्थिति का समस्त दोषारोपण मुझ पर कर सकती थी। मुझे कोस सकती थी, लेकिन उन्होंने मेरी मन स्थिति की गभीरता को समझा और जिन शब्दो म मुझे दिलासा दिया उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर पाओगी।

फिर भी माधवी पति का स्थान तो व नहीं ही ले सकती थीं। मेरे पति ने स्वय ही निर्वासन ओढ लिया है और मुझे घर की चारदीवारी मे छोडकर ही निर्वासित कर गये हैं। ऐसे म घर काटने को दौड़ता था। अतीत के उस क्षण की याद आती तो आत्मग्लानि से झुरने लगती। माताजी न सौगध देकर सब कुछ सच सच जान लेना चाहा। पर मैं कुछ बता न सकी।

"इसी बीच मैंने कमल का एक और भी पत्र लिखा। अपने हृदय के स्पदन को कागज पर चित्रित कर देने म कोई कसर नहीं छोडी, 'तुम चले गय। मैं तुम्हे बाँधकर न रख सकी, पर तुम्हें क्या पता कि मैं किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रही हूँ! तुम्हारे देह की गध तुम्हारे हृदय का स्पदन तुम्हारा मधुमय स्पर्श, मेरे सजल नयनो पर तुम्हारे प्रणय का चुबन — सभी तो याद है। कमल मैं कोई पत्थर की प्रतिमा नहीं। यहा हृदय भी है भाव भी और आमत्रण भी। मैं कोई मरुभूमि नहीं हूँ!'

अपनी दह अपन प्राण—किसी की सुधि नहीं रही। विरहिणी बनी हर क्षण तुम्हारा पथ जाहती हूं। म जानती हूँ कि स्मतिया म जीन म कोई लाभ नहा, नयनों की बरसात कोई अथ नहीं रखती पर क्या करूँ, मन को ममझाना मर वश की बात नहीं रह गयी। तुम्हीं कहो कि कम भुला दू ? तुम मुझे छोड गय, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रहूँगी। अनत प्रतीक्षा। स्त्री की डोली आती है और पतिगह स ही उसकी अर्थी भी निकलती है—बस मुझे यही याद है। तुम मेरे पास नहीं हो, पर मैं अपनी मौन आराधना के पुष्प नित्य तुम्हारे चरणो म चढाती रहूँगी। मुझे पूण विश्वास है कि यदि मरा प्रेम सत्य है तो तुम अवश्य आओगे। यदि ऐसा नहीं हुआ तो सोचूगी कि मेरा ही कुछ दोष है ।

"और इस पत्र का भी कोई उत्तर नहीं मिला। घर काटने को दौडता था। मेरी उदासी को लक्ष्य कर माताजी ने ही सुझाव दिया कि कुछ दिन मायके म रह आऊँ। उन्हें मा अकेला छोडकर जाने को मरा मन नहीं हुआ, किंतु उनके हठ के समक्ष नत होना पडा।

"और अब माँ के पास हूँ। सोचती हूँ, अपनी उन्हीं सामाजिक गतिविधियों को और तेज कर दू। मरी मुक्ति की राह वहीं निकल आयेगी। लेकिन यह भी मरा दढ विश्वास है कि कमल का लौटना होगा। मर समपण की उपेक्षा व नहीं कर सकते। मैं जानती हू मर बिना वे रह नहीं पायेंगे। मरी निष्ठा की सीमा नहीं। मरी आत्मा की पुकार की उपेक्षा उनके वश की बात नहीं होगी। हाँ ऐसा हो सकता है कि तब तक बहुत विलब हो चुका हो। तब भी विजय मरी ही होगी।'

इतना कहकर कंचन चुप हो गयी। फिर इस सबध म कभी कोई बातचीत नहीं।

उन लगभग दो सप्ताहों म कंचन मर परिवार म खूब रच बस गयी। किंतु उसके जीवन की वास्तविकता स मर और रोमा के अतिरिक्त और कोई परिचित नहीं हो पाया। उसकी आवश्यकता भी नहीं थी। और मरी वह अभागी सखी जब वहाँ स लौटी तो उसी तजादीप्त मुख मुद्रा के साथ। दढ सकल्प से भरपूर आत्मविश्वास स परिपूण। मुझ उस पर गव की अनुभूति हुई। पीडा भी कम नहीं थी।

रेलवे प्लेटफार्म की उस खाली बेंच पर कचन की प्रतीक्षा का समर्पित उन क्षणों म मै मन ही मन उसके लगभग समूचे इतिवृत्त को दुहरा गयी थी। अतीत का यही क्या कम महत्व है कि वह वर्तमान के दुख को सह्य बना रहता है। अथवा सुख की प्रभावोत्पादकता को द्विगुणित करता है। कभी कभी इसका विपरीत भी निस्सदेह होना होगा। तब मुझे उस पत्र की भी स्मृति आयी जो मैंने कचन के दिये पते पर कमल को लिखा था। उस पत्र म मैंने नतिकता-अनतिकता विवशता और अत स्फुरित आकषण आदि के मध्य विभाजक रेखाएँ खीचते हुए कचन की वास्तविकता को उभारने का खूब प्रयत्न किया था। समव है, कही आक्रोश भी व्यक्त हुआ हो। मैं चाहती थी कि कमल कचन की निष्पाप निष्कलुष आत्मा को पहचाने। उसके निश्छल मन का उचित मूल्याकन करे। यह भी लिखा था कि यदि वह ऐसा नही करता तो निश्चित ही उससे बढकर अभागा और कोई न होगा। कचन सरीखी पवित्रता और कहा मिलेगी? उसे पाकर उसके सामीप्य म रहते हुए भी यदि तुम्हारा द्वद्व शात नही हुआ यदि तुम उसकी स्पष्टवादिता का सम्मान नही कर सकते, उसके [illegible] नतिकता सबधी व मापदड मिट नही पाते तो मैं कहूँगी कि तुम [illegible] म पिछड गये हो। तुम्हारे भीतर वही आदिम बबर पशु [illegible] जो छिपकर वार करता है। लेकिन उस वार का प्रभाव [illegible] रहेगा नही। नारीत्व का अपमान कर तुम कभी [illegible]।

जाने क्या-क्या मैंने लिखा था। अब तो ठीक [illegible] ही बातें थी। मेरा वह पत्र भी मदव अनुत्तरित [illegible]

प्लेटफाम पर लगे माइक्रोफोन घनघना उठे। कचन को जिस ट्रेन से आना था, उसी के सबध मे सूचना थी कि कुछ ही देर बाद वह प्लेटफाम पर पहुँच रही है।

मैं अतीत से वतमान म लौट आयी। चारो आर की खामोशी अब हलचल मे परिवर्तित होने लगी थी। खभो के सहारे बठे, ऊँघत हुए कुली अब उबासियाँ ले रह थ। यात्रिया की चहल-पहल और मित्रा परिजना क स्वागताथ पधार लोगा के चेहरो पर ताजगी की रौनक छा गयी थी।

मेर वक्ष की धुकधुकी बढ चली।

आनन्द का चिर प्रतीक्षित क्षण अब उपस्थित होने ही वाला था। *प्राण प्रिय सखी से भेंट हागी।* इससे पूव हुई समस्त भेंटा से यह इस बार हाने वाली भेंट मुझे अधिक विह्वल किय द रही थी। इस बार वह अकेली नही आ रही। इस बार वह बिखरी हुई नही होगी। इस बार उसकी आकृति पर विजय की चचल आभा-लास्य की अनेक भगिमाओ का अबाध प्रदशन कर रही हागी।

प्लेटफाम का फश काप उठा जसे भूकप हुआ हो। काना के परदा को धमका दने वाली एक चीख—सीटी की चीख—उभरी। कालाकलूटा एक राक्षस धडधडाता हुआ मरे सामने से आग सरक गया। मैं काप उठी। समस्त कल्पनाएँ एक झटके के साथ बिखर गयी। मेरी धुकधुकी बढ चली जिस सभालत हुए मैं उठी और खड खड करती ट्रेन की दिशा म बढ चली।

प्रथम श्रेणी के एक कम्पाटमट के द्वार पर कचन ही खडी थी और उत्सुक दृष्टि स भीड की रेलमपेल म किसी का खोजन म प्रयत्नशील लगी।

ट्रेन रुकी तो मैं सीधी उसी कम्पाटमट की ओर लपकी। कचन ने मुझ दखा ता झट स कूद पडी और मुझस लिपट गयी।

स्फूर्ति स भरपूर उसका यह आलिगन बरसा बाद अनुभव हुआ।

कमल क्या नही आय? स्वय को बधन मुक्त करते हुए मैंने पूछा।

आय क्या नही! समान मज रह होगे स्वस्थ हात हुए उसन कहा।

तभी कमरा द्वार पर प्रकट हुए। चेहरे पर मुसकराहट थी। मुझे बडा सुखद लगा। परस्पर मुसकराहटों म ही अभिवादन का आदान प्रदान हुआ। सकेत से उसने एक कुली को बुलाकर सामान उठाने का आदेश दिया और कुछ देर के लिए फिर व्यस्त हो गया।

इस बीच मैंने एक बार फिर कचन को ध्यानपूर्वक देखा। वह पूर्ण स्वस्थ लगी। सचमुच उसकी आकृति पर मेरी कल्पना के अनुरूप विजय की कचन आभा लास्य की अनेक भगिमाओं का अबाध प्रदर्शन कर रही थी।

'अब कमी है न?'

'अब तो नहीं हां!'

मेरे प्रश्न की व्यजना को उसने और उसके उत्तर की व्यजना को मैंने सहज ही पा लिया।

और हम तीनों घर लौट आये।

कदम्ब के निस पेड तले बैठी मैं कचन की जीवन कथा को लिपिबद्ध कर रही हूँ यहीं ईजी चेयर पर अपने सामने उसे बिठा मैंने धीरे धीरे कर उससे सारी बातें पूछी हैं। वे तमाम बातें जिनकी कोई जानकारी मुझे नहीं थी। यही कि सुबह के भूले पछी साझ को घर कैसे लौट आये? कमल को मानसिक द्वन्द्वों म मुक्ति कैसे मिली?

सर्दियों के मध्य के गुलाबी जाडे मे गुनगुनी धूप खूब सुहानी लगी थी। क्यारियों म नये गुलाब खिलने लगे थे। गुलदाउदी का यौवन अब निखार पर था। ऐसे ही वातावरण मे इसी कदम्ब के नीचे ईजी चेयर पर बैठी कचन से मैंने पूछा था, "य तो बडा अच्छा लग रहा है, फिर भी जिज्ञासा है कि यह सब कैसे सभव हुआ?" कचन सिर्फ मुसकरा दी।

राजन सवेरे जरा जल्दी ही घर से निकल गये थे, और कमल को भी साथ लिवा ले गये। मेरे सास श्वसुर तब विदेश भ्रमण पर थे। घर म सिर्फ मैं और कचन। तय तो यही था कि हम दोनो भी राजन के ही साथ चलते। वे बेशक अपने काम धधे म उलझे रहते पर हमारी अच्छी खासी पिकनिक हो जाती। मैंने ही कार्यक्रम मे परिवर्तन कर दिया। लोभ मात्र यही था कि कचन के साथ एकान्त म बैठने का अवसर मिलेगा और ज।

तक मेरा अनजाना है, उसे जानकर उसके कथानक को एक नयी गति मिलगी।

कचन की वह मुसकराहट बडी रहस्यमयी लगी। मैंने फिर पूछा "कुछ बताओगी नही क्या ?"

काफी का घूट भरते हुए उसने कहा न बताने जसी तो कोई बात नही। तिस पर जानने का पूरा अधिकार है तुम्हे !

"लेकिन वह सब जानकर अब होगा क्या ? इतना ही पर्याप्त है कि जीवन की जो बाजी लगता था कि मैं हार गयी हूँ, उसमे जीत निसन्देह मेरी ही हुइ है। किंतु इस विजय के बाद भी पराजय बोध का कमलापन जीवन के आनद मे कभी कभी व्याघात उपस्थित करता है। कुल मिला कर मैं वास्तव म प्रसन्न ही हूँ ! तुझे क्या ऐसा ही नही लगता ?'

कचन के इस उत्तर म एक उलझाव था। इस गुत्थी को एकाएक हल कर पाना मेरे लिए सभव नही हो पाया। मैंने टोक दिया 'तुमने यह कम कह दिया कि जानकर अब होगा भी क्या ? भूल गयी कि एक बार तुमने क्या कहा था ? तुमने कहा था कि मेरी सबसे पहली पुस्तक तुम्ही पर आधारित होगी। और बनर्जी बाबू के आदेश का पालन करने के लिए भी मैं अब कृत सकल्प हूँ। सिर्फ सखी के नाते ही अब मैं नहा पूछ रहा ! इसी लिए भी सब कुछ जान लेना चाहती हूँ कि कुछ निष्कर्षों तक पहुँच सकू। किंतु तुम्हारे उत्तर ने तो मुझे और भी उलझा दिया है। तुम्हारे कथन म विरोध का स्पष्ट आभास होता है। सीधी सादी भाषा म कहो तो कुछ समझ जाय।

कचन स्थिर दृष्टि मुझे देख रही थी। वह तीखी नजर मेरे भीतर गड गयी। हलकी मुसकराहट के साथ उसने गहरी सास ली। इसके बाद कई क्षण का बोझिल मौन। जसे कुछ सोच रही थी। प्याले की बची हुई काफी को एक ही घूट मे समाप्त करते हुए उसने कहा, 'मेरे कथन का विरोधाभास प्रकारातर से क्या जीवन का ही विरोधाभास नही ? जिस जीवन के सबध मे तुम सीधी सादी भाषा मे सुनना चाहती हो वह क्या टेढी मेढी पगडडिया से ही गुजर कर यहा तक नही पहुँचा ? इस बात का भी क्या भरोसा कि अब शेष समस्त पथ सीधा और सपाट होगा !

मै और अधिक उलझ गयी। उसने मेरे असमजस को स्पष्ट रूप मे लक्ष्य किया। सहज होने का प्रयत्न करते हुए कहा मै तुम्हे उलझाना नही चाहती माधवी ! कुछ बताने से इकार भी नही। तू यही जानना चाहती है न कि यह सब कैसे समव हो पाया ! इसमे अस्वाभाविक कुछ भी तो नही। समूचे घटनाक्रम की परिणति इसके अतिरिक्त कुछ और हो भी नही सकती थी। कमल मूलत बुरे व्यक्ति कभी नही रहे। वे मुझे प्यार भी करते है। इस सबध मे तो उनसे प्रथम परिचय मे भी मुझे कोई भ्रम नही हुआ था। लेकिन यह सत्य का एक पक्ष है !

"और दूसरा पक्ष ?' मैंने पूछा।

"हा जब एक पक्ष है तो दूसरा पक्ष भी निश्चित ही कोई न कोई होगा। तेरा क्या विचार है ?"

'मेरा विचार कुछ भी हो, कचन ! मै तेरा विचार ही जानना चाहती हूँ। यदि मैं अपनी ओर से कोई मत स्थिर कर लूगी तो वह भी तो सत्य का एक ही पक्ष होगा। इसीलिए दूसरे पक्ष को प्राथमिकता दिया चाहती हूँ।"

काफी चतुर हो गयी हो" कचन ने कहा था होना ही पडेगा ! गोताखोर यदि सावधान न हो तो सागर के तल तक पहुँच कर मोती नही बटोर पायगा। विशेष रूप मे तब जब सागर की गहराई की कोई थाह न हो !'

मेरे विषय मे यही मत स्थिर किया है तुमने ?' स्वर मे एक विचित्र सतर्कता का आभास मिला !

करना पडा। अन्यथा जीवन के प्रारभ के उस कटु क्षण की समस्त पीडा क्या तुम इतने बरस अकेली भोग पाती ? मुख तक से उल्लेख न किया। इस व्यवहार से भी तो द्वत की परछाइ झिलमिलाती है !"

इस मीठे आरोप के लिए भी वह प्रस्तुत नही थी। उसके तर्क की धार पैनी हो गयी, 'द्वताद्वत के चक्कर मे मत पडो, माधवी ! तुम तो जानती हो कि अद्वैत मे भी द्वैत की खाइ तो रहती ही है ! अविश्वास मत करो। इतनी-सी बात पर क्या आस्था डगमगा जायगी ? अपने प्रति क्या कभी कोई दुभावना मुख मे पायी है ? वे सब स्थितिया मैं तुम पर पहले ही स्पष्ट

कर चुकी हूँ। या, बार-बार दोहराना क्या अच्छा है ?"

सहज भाव और अच्छे उद्देश्य से कही गयी बात का मोड़ इस करवट जा बैठेगा इसकी कल्पना मुझे नहीं थी। मुझे सचमुच पश्चाताप हुआ। हथियार डालते हुए मैंने कहा, "मेरा यह अभिप्राय नहीं था, कंचन ! तुम्हें बुरा लगा हो तो ।"

और वह खिलखिला कर हँस पड़ी। वातावरण हलका हो गया। कृत्रिम रोष व्यक्त करते हुए कंचन चहकी, "बड़ी जल्दी हथियार डाल देती हो। मंत्री के अधिकार से क्या मुझसे तुम उलझ नहीं सकती थी ?

फिर पराजय ! कंचन का यह विजेता का रूप मुझे अच्छा लगा। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण था कि उसके जीवन का उल्लास अब लौट आया है। उसके अंतर्मुख भोले स्वभाव ने जीवन में पग पग पर पायी कटुता से बहुत कुछ सीख लिया है ! उसकी बात के उत्तर में मैंने कहा, "जब कमल ने तुम्हारे समक्ष हथियार डाल दिये तो मैं बेचारी किस खेत की मूली ! अब मुझे और अधिक बहकाओ मत ! मैं जो जान लेना चाहती हूँ वही सच मुझे बताओ।

कंचन तनिक संभलकर बैठ गयी। उसकी साड़ी का आँचल वक्ष से सरक कर नीचे स्थान पर सिमट गया था। सलीके से सँवार गये खुले केश पीठ और कंधों पर छितराये थे। उनमें नहाकर आने के बाद की आर्द्रता अभी शेष थी। माँग में गत दिवस भर गये सिंदूर की लालिमा अब भी झिलमिला रही थी। उसकी स्याह भौंहें कुछ सिकुड़ीं। लंबी पलकें खुलीं और क्षण भर को फिर मुंद गयीं जैसे ध्यानावस्थित हो ! पतले और गुलाबी अधर तनिक भिंच गये। आत्म मंथन की स्थिति में कदाचित ऐसा ही होता है। गौर वर्ण कपोलों की अरुणाभा तनिक वर्द्धिगत हुई। उसकी इस प्रिय छवि को मैं मुग्ध भाव से निहार रही थी। एक बार तो मन हुआ कि वह इसी प्रकार बैठी रहे और मैं निहारती चलूँ। विधाता ने कैसे सौन्दर्य का दान उसे किया है ! विश्वविमोहिनी का सा रूप, जिसने इस अमृतोपम सौंदर्य का पान किया है वह कभी इतस्ततः भटक नहीं सकता। लेकिन जब तक इस ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं होती ऐसे ईमानदार क्षणों की वह उपेक्षा करता रहेगा तब तक भटकावों के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प हो नहीं

सकना। मुझे लगा कि कमल की भी सभवत ऐसी ही स्थिति रही है। उसकी पुरुपाचित अहमन्यता ने ही उसे भटकाया होगा। किंतु अब विश्व मोहिनी के इस रूप का निहार कर वह सचमुच ठगा गया होगा। यह ठगा जाना ही ता भटकावो का अत है!

ता सुनो, माधवी !'

मेरी विचार शृ खला भग हा गयी। सम्माहन स्थगित हा रहा। कचन मुखर हुई थी "पिछली बार जब तुम्हार निमत्रण पर मैं यहा आयी थी तब सभी बातें मैंने तुम्ह बतायी थी। फिर यहा से जब लौटी तो अपन उसी सकल्प को और भी सुदढ बनाया कि समाज सवा म ही स्वय का भुला दूगी! अपन समपण की एकनिष्ठता पर मुझे आस्था थी। जानती थी कि कमल का लौटना ही हागा--'उडी जाऊ कितहू तऊँ गुडी उडाइक हाथ।' मैंने जिस अदृश्य सूत्र स बाँध कर उन्ह बधनमुक्त कर दिया था, उसकी अपेक्षा वे कर ही नही सकत थ। बीच म बस एक ही बाधा थी—विचारो और मान्यताओ की बाधा! उन मान्यताओ की पृष्ठभूमि मे एक सम्पूर्ण युग चितन है। उस युग चितन का प्रभाव एकदम से समाप्त नही हा जाता। एक दीघकालीन प्रक्रिया के अतगत ही ता वसा सम्भव हो पायगा। और वह चितन नैतिकता और पवित्रता—विशेष रूप से नारी के सदभ म—मे सबधित है। समाज का नियता पुरुप नारी की अक्षत यौवना स्थिति को ही स्वीकाय मानता आया है। और वह बार बार इस तथ्य का विस्मृत कर देता है कि उसके पूवजा न एक नही अनक बार ऐसे प्रश्न उठा कर अपनी ही मान्यताओ को नकारा है! महाभारत की कुन्ती की कथा ही क्या इससे भिन्न है? इन्द्र क शाप स पाषाणी बन गयी अहिल्या की कथा भी प्रकारान्तर से क्या मेरी ही कथा नहीं? गौतम क्या उस स्वीकार कर लेन का प्रस्तुत नहीं हुए? इस तथाकथित नतिकता क खण्ड खण्ड हो रहन की परिस्थितिया म कमानेश अतर हा सकता है किन्तु बात एक ही रहेगी।"

मुझे आभास हुआ कि कचन आत्मग्लानि की कुठाओ स मुक्त हा चुकी है। अपनी स्थिति को स्वीकारत हुए भी आत्महीनता की कोई भावना उसम अब शेप नहीं रही। पूछा तो क्या तुमन फिर कोई पत्र लिखा ।

था ? मैंने लिखा था, जो हमेशा अनुत्तरित रहा।"

'उसकी अब कोई उपयोगिता तो नहीं रही थी पर एक पत्र मैंने लिखा था। उत्तर मुझे उसका भी नहीं मिला। उत्तर में वे स्वयं ही पधारे थे, लेकिन काफी देर बाद और वह भी ऐसे अवसर पर जब मैं क्षण के व्यामोह से ग्रस्त अपने ही निर्णय की खाई में लुढ़क पड़ने को तैयार थी। ठीक अवसर पर पहुँच कर कमल ने ही मुझे उस पतन से उबार लिया। लेकिन यह तो बाद की बात है।'

तो पहले की बात ही पहले सुनाओ,' मैंने आग्रह किया।

पहले की बात तुम्हें एक बार फिर आशुतोष तक ले जायेगी।"

'आशुतोष ? वह कैसे ?" मैं चौंकी।

हाँ आशुतोष ! तुझे पता होगा कि उसने अभी तक विवाह नहीं किया। मेरे प्रति कमल की विरक्ति के तथ्य को भी जाने कैसे वह जान पाया होगा। इसी बात से वह पीड़ित था। गणेश को जानती हो न ? अपना वह गुरखा चौकीदार ! छुट्टी लेकर अपने संबंधी से मिलने राजापुर गया था। लौटा तो आशुतोष का एक विस्तृत पत्र उसने चुपचाप मुझे ला थमाया। मैं उस पत्र को स्वीकार नहीं करना चाहती थी, पर यदि ऐसा न करती तो तिल का ताड़ बन सकता था। इसीलिए चुपचाप थाम लिया। पढ़ लेने की उत्सुकता को भी रोक नहीं पायी। लेकिन पत्र में ऐसा कुछ भी तो नहीं था जो किसी प्रकार के क्षेप का जन्म देता।'

कंचन से प्राप्त इस नयी सूचना से मेरी उत्सुकता तीव्र हो उठी। 'आखिर कुछ तो लिखा ही होगा उसने ?"मैंने पूछा।

हाँ कुछ क्या, काफी कुछ लिखा था। इस समय यदि वह पत्र मेरे पास होता तो तुम्हें भी दिखा देती।'

जितना याद हो वही बता दो।'

उसने हथेलियों में सिर थाम कर उसे याद करने का प्रयत्न किया और उसी मुद्रा में रहते हुए बताया, लिखा था—जीवन के उस प्रथम चरण में मुझसे जो भूल सम्पन्न हुई तुम्हारे प्रति, वह अक्षम्य है। क्षमा मैं माँगूगा भी नहीं। दंड, जो चाहे दे सकती हो। कमल के तुम्हारे जीवन में आने से पूर्व मैंने अपराध का परिमार्जन करना चाहा था। परिमार्जन भी

क्या, मेरे अपने ही हित की बात थी। अपने ही उस स्वप्न को साकार करना चाहता था जिसे मैंने वर्षों पहले मन में सँजोया था। पहले मेरा अनुमान था कि तुम मन के किसी न किसी स्तर पर मुझसे प्रेम करती हो। मैं भी अनेक बार बातों बातों में ऐसी सम्भावना का आभास करा चुकी थी। मैं तुमसे विवाह का आकांक्षी था। शारीरिक आकर्षण भी आखिर प्रेम का ही एक अंग है। उसी प्रेम के वशीभूत मुझसे 'बस' हुआ। यह भावना भी पृष्ठ में थी कि आखिर कभी तो तुम्हें मेरी होना ही है। आज अनुभव करता हूँ कि चूक वहीं हुई। मुझ से जल्दबाजी हो गयी। मैंने धीरज खो दिया। यह सत्य अब निरावरण हो पाया है कि पुरुष नारी से जिस वस्तु को सर्वप्रथम प्राप्त कर लेना चाहता है उसे वह सबसे अंत में ही दे पाती है। लेकिन

आशिकी सब्र तलब और तमन्ना बेताब

दिल का क्या रंग करूँ खून जिगर होने तक ?

"खैर, उन सब बातों को कुरेद कर तुम्हारे जीवन की झील में कंकड़ फेंक कोई हलचल पैदा करने का उद्देश्य मेरा नहीं। तुमने मेरे विवाह-प्रस्ताव को ठुकरा दिया, वह पीड़ा भी मुझे तोड़ नहीं पायी। अपने प्रति तुम्हारे आकर्षण को आखिर मैंने ही घृणा में परिवर्तित किया था। तब भी उम्मीद की एक कोई किरण मुझे गुदगुदाती रही। उस पर भी अँधेरे की स्याहियाँ उस दिन पुत गयीं जिस दिन तुमने कमल को जीवन-साथी के रूप में स्वीकार कर लिया। तब मैंने अपने लिए एक नयी किरण का आविष्कार किया निर्णय लिया कि अविवाहित रह कर ही जीवन व्यतीत कर दूँगा। तुम्हारे प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने का इससे श्रेष्ठ कोई माध्यम मुझे नजर नहीं आया।

"किन्तु इधर जब से यह जाना है कि कमल ने तुम्हारा लगभग त्याग ही कर दिया है तब से आत्मग्लानि वश झुलसा जा रहा हूँ। सम्भव है इस परित्याग का कारण भी तुम्हारे प्रति मेरा वही अन्याय हो। वह एक क्षण की भूल वास्तव में हम दोनों और विशेष रूप में तुम्हारे लिए बहुत मँहगी पड़ रही है। तुम यदि स्वीकृति दो वचन तो आज भी अपने जीवन में तुम्हारा अवतरण परम सौभाग्य मानूँगा।"

कहते कहते वचन मौन हो गयी।

मैंने पूछा "तुमने इस पत्र का कुछ उत्तर दिया ?"

"नहीं।"

क्या ?

तुम्हारे विचार म इसका कोई उत्तर हो सकता था ?"

मुझे निरुत्तर होना पडा। फिर पूछा, "इसके बाद ?"

इसके बाद वही देहात, पाठशाला, नागेश्वर बाबा का सरल वात्सल्य और क्या ! न सिर्फ इतना, बल्कि मैं गांव म ही रहने भी लगी। पाठशाला स ही लगा हुआ छोटा सा घर भी बनवा लिया।'

चाची जी चाचा जी ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की ?'

'नहीं, किसी न कोई आपत्ति नहीं की। मैं किसी भटकाव मार्ग पर नहीं थी। मेरे उद्देश्य की पवित्रता से वे अभिज्ञ थ। सप्ताह म एकाध बार घर जाती।"

'कमल की माता जी न इसे किस रूप म लिया ?'

'उनस मेरा पत्र व्यवहार बराबर बना रहा। उन पत्रों स तो मुझे वैसा कुछ अभास नहीं हुआ। हां, एक बार व स्वय पधारी थी—मुझे सूचित किय बिना ही। मैं तब किसी कार्यवश दूसरे गाँव म गयी थी। वही जहां कमल स मेरा प्रथम साक्षात हुआ था। लौटी तो देखा कि व घर पर ही विराजमान है। सन्देह की एक धुंधली छाया मेरे चहरे को क्षण भर के लिए मलिन कर गयी। पर मेरा ऐसा सोचना भ्रम ही सिद्ध हुआ कि व मेरे रास्ते को सदेह की दृष्टि से देख रही हैं। पाव छू कर मैंने उनस आशीर्वाद पाया। उन्होंने बताया कि 'मुझे देखने का मन हुआ था सो चली आयी बिना सूचना दिय ही। मुझ पहले पता नहीं था कि देहातवासी तुम्हें इतने अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।' मात जी न हां स्वय जानकारी दी कि मेरी अनुपस्थिति मे व आस पास क कई लोगों स मिल भी चुकी हैं। उन सबको हम दोनों के परस्पर सबधों क बार म कुछ जानकारी भी नहीं रही होगी। मुझे लगा कि उन्होंने मेरे बारे म कदाचित कुछ बढ़ा चढा कर ही कह दिया है। माताजी की आँखों की चमक और आकृति पर तरल मनोव गौरव और उल्लास के कारण ही मुझ ऐसा लगा।"

मैं चुपचाप सुन रही थी। वचन कहती गयी –

'माताजी से मैंने कहा था कि यदि आप मेरे इस मार्ग को अनुचित समझती हों तो मैं तुरंत इसका परित्याग कर सकती हूँ। यह भी बताया कि कमल से मेरा प्रथम साक्षात इसी रूप में हुआ था। अब उनकी अनुपस्थिति में यही सब करने से सुख मिलता है। यों जब भी आप आदेश करें बुलायें—सेवा के लिए चली आऊँगी। कुल पर, परिवार पर, समझती हों कि मेरे ऐसे कार्य से कोई धब्बा लगता है तो छोड़ दूंगी यह सब भी। जैसा आप कहेंगी, करूँगी। आप बिलकुल ऐसा समझिए कि कमल आपके पुत्र हैं तो मैं भी आपकी ही बेटी हूँ।

' इस पर उन्होंने तनिक आगे सरककर मेरा माथा चूम लिया। कहा नहीं बहू! तेरे इस कार्य को कुल या परिवार पर कोई कलंक या धब्बा मैं नहीं मानती। मैं भी औरत हूँ। तेरे मन की व्यथा को खूब समझती हूँ। यही तो चिंता है। समझ नहीं पाती कि इस अनिंद्य रूप का दबी से स्वभाव का वह अभागा भूल क्या जाना चाहता है! यही सोचकर आयी थी कि तुम्हारे इस विग्रह का ठीक ठीक कारण अवश्य पूछूंगी। किंतु अब कुछ पूछने को शेष नहीं रह गया। तुमने साधना का जो पथ अपनाया है निष्ठा और त्याग का जो आदर्श प्रस्तुत किया है वह अवश्य फलीभूत होगा। मेरा घर तेरा भी है। मैं तुझे बुलाकर अपने पास रख भी सकती हूँ, पर जानती हूँ कि उससे भी तुझे शांति नहीं मिलेगी। मैं चाहती हूँ कि तू उसी तरह कमल के साथ एक बार फिर घर की देहरी पर पग धरे जैसे पहली बार धरे थे जब तू दुलहन बनकर आयी थी। मेरा आशीर्वाद है, बेटी! वह एक न एक दिन अवश्य आयेगा। और यदि उसने विश्वासघात ही किया—जिसकी मैं कोई संभावना नहीं मानती—तो भी तू मेरी बेटी है। मेरी गोद में तेरे लिए हमेशा जगह रहेगी।

"इस स्नेह वर्षा से मैं विभोर हो उठी। मुझे फिर से आशीर्वाद देकर वे उसी दिन लौट गयीं। सास और बहू का यह अनोखा संबंध था। इसे अपना सौभाग्य ही कहूँगी कि ।"

"कमल को तुम्हारे वहां होने की जानकारी थी? मैंने बीच में टोक दिया।

'अवश्य रही होगी। अपनी माताजी से ... अवश्य ...

की सूचना मिली होगी।"

"कमल जब लौटा तो सीधा तुम्हारे पास ही पहुँचा ?"

'हां, पहुचे थ। सीधा मेरे ही पास पहुँचे थ। लकिन उनस भी पहल आये थे आशुतोष।

कचन से यह सुनते ही मुझे ताप हो आया। क्या य आशुतोष भाइ उसकी जिंदगी म यों राहु की तरह चक्कर काटते रह ? प्रकट म पूछा, 'आशुतोष ? फिर किस लिए ?'

कचन ने मेरे मन का दोष पढ़ लिया। स्निग्ध स्वर म कहा, 'गुस्सा क्या करती हो, माधवी ? वह आया था, अपने अपराध का मार्जन करने। दड पाने क उद्देश्य स।'

तो क्या दड दिया तुमने उस ?

'मैं क्या दड देती ? व्यक्ति स्वय ही स्वय का दडित कर लेता है। मैं समझती हूँ कि किसी दूसरे का यह अधिकार है भी नहीं। हाँ मुझे उसके प्रति हुई करुणा। आखिर वह भी तो मेरे ही कारण निर्वासन भोग रहा था। तभी उसने एक बार फिर वही पत्र वाली बात दुहरायी। मैंने अस्वीकार कर दिया।

लेकिन माधवी, अब कुछ भी छिपाऊँगी नहीं और सुनकर तू भले ही व्यग्यपूर्वक हँस लेना। जानती है आशुतोष के आने के बाद मेरा चिंतन किन दिशाओं की ओर उन्मुख हो गया। आशुतोष जब गया तब जाते जाते इतना और कह गया था 'किसी प्रार्थना या अनुरोध क द्वारा मैं तुम्हे घेरने का प्रयास नहीं करूँगा। फिर भी सोच लेना। तुम्हारा अपना मन जिस बात की अनुमति दे—वही करना। तुम्हारा निर्णय सुनने के लिए एक बार फिर आऊँगा आर उसके जाते ही मैं टूट गयी। मुझे लगा कि मैं व्यर्थ हूँ। मेरा अस्तित्व किसी क लिए भी उपयोगी नहीं। कमल ने कभी मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया। कदाचित इसलिए कि वह मुझसे कोई सबध नहीं रखना चाहता, लेकिन अपनी ओर से इस बात का कह भी नहीं पाता। दूसरी ओर आशुतोष सिर्फ मेरे कारण जीवन के ऐसे स्थल पर खड़ा ह जहाँ स कोइ राह किसी ओर नहीं जाती। अपने इन्हीं मानसिक द्वन्द्वों म घिरी होने के कारण मैं तुम्हारे पत्रों क उत्तर भी नहीं दे पायी थी।

लिखती भी क्या ! और तब मेरा मन कमल और आशुतोष दोनों के प्रति एक अनजानी करुणा से विगलित होने लगा। एक मुझसे बांध सबध चाहता नहीं, ऐसा लगता था और दूसरा मुझसे सबध टूट जाने पर दुखी था।'

"तब क्या निर्णय लिया था तुमने ?" मेरी जिज्ञासा इतनी बढ़ गयी थी कि कलेजा धड़कने लगा। लेखन मे प्रवृत्त होकर भी कचन के इस द्वन्द्व की कल्पना मैं नहीं कर पायी थी। एक रहस्य खुलता तो भीतर से रहस्यों की एक परत और उभर आती। ठीक मानव मन की तरह !

निर्णय लेना इतना आसान तो नहीं होता, माधवी ! बस, इन्हीं दो पाटों म पिसती रही। कमल के जीवन से हट जाने की बात मन म आती तो उनकी माताजी का वह ममतामय रूप सम्मुख आ जाता। मेरे किसी भी विपरीत निर्णय की उनके मन पर कैसी प्रतिक्रिया होगी ? फिर यह भी पता लगता कि कमल के पथ की बाधा बनकर उनका भी कोई उपकार मुझसे संभव न हो पायगा। उन्हें मुक्ति देकर भी किसी स्वतंत्र मार्ग पर चल पाना मेरे लिए कैसे सहज होता ? आशुतोष की व्यथा भी तो राह रोकती थी। इस संघर्ष ने मुझे लगभग विक्षिप्त सा कर दिया।"

'पर तेरी वह निष्ठा एकात्म भाव का समर्पण—इन सबका कोई विचार तेरे मन म नहीं आया ?'

मेरा यह प्रश्न सखी के नाते नहीं पत्रकार सरीखी चातुरी थी। कंचन ने पकड़ लिया, स्वर तेजस्वी हो आया। कहा, 'अच्छा होता यदि वह विचार आता ही नहीं। तू क्या समझती है कि यदि कमल के पथ से हट जाने का निर्णय मैं लेती ही तो उसमे मेरे समर्पण की हानि होती ? समर्पण अथवा निष्ठा पैरों की जंजीरें तो नहीं। उसका कार्य है गति देना, उन्मुक्त करना। और नारी होकर भी क्या आशुतोष की पश्चात्ताप भावना की उपेक्षा की जा सकती थी ?"

मैंने पूछा, "आशुतोष क्या दुबारा भी आया था ?" 'हां आये थे। मेरे निर्णय से परिचित होने के लिए आये थे ! और मैं तब भी दोराहे पर भटक रही थी। उस दिन मैंने उनमें भी विह्वलता की पराकाष्ठा स्पष्ट लक्षित की थी। फिर भी स्पष्ट रूप से कुछ न कह पायी। मन था कि उसी करवट बैठ जाना चाहता था, पर होंठ जड़ हो गये। जैसे पत्थर की निर्मिति हो,

निर्जीव। ऐसा भी लगा कि यह पाप होगा। उनके अत्यन्त आग्रह पर एक मात्र इतना कह पायी कि मुझे ठीक से सोच समझ लेने का अवसर दो ! मैं कल अपने अंतिम निर्णय से अवश्य परिचित करा दूंगी।" यह जानकारी देकर कंचन हांफने लगी।

तब ?" संक्षिप्त सा मेरा प्रश्न।

"तब आशुतोष चला गया, और मैं अंतर्द्वंद्व की आग में झुलसने लगी। एक प्रबल झंझावात था और मैं एक तिनके सरीखी उड़ रही थी।"

'तब वह 'कल' कभी नहीं आया ?'

हां, आया, नहीं भी आया। कभी आयेगा भी नहीं।"

"उलट बासी नहीं, कंचन ! सीधे सीधे शब्दों में कहो।"

कंचन ने मुझे जैसे घूरा, फिर कहा, "बिलकुल सीधे शब्दों में ही कहा है। वह 'कल' आया। उसके साथ ही आशुतोष भी आये। पर उससे पूर्व ही, उसी 'कल' के दिन कमल भी आये।'

मैंने एक दीर्घ निश्वास ली। मन जैसे मुक्त हो गया। कंचन कहती गयी 'कमल जब आये तब तक मैं अपनी ओर से स्पष्ट निर्णय ले चुकी थी कि कमल के जीवन का बोझ और अधिक नहीं बनूंगी ! मेरे इस निर्णय के साथ ही द्वार पर दस्तक हुई। मैंने समझा कि आशुतोष होंगे। उठकर द्वार खोला तो सामने कमल थे। निस्तेज आकृति, चेहरा कुम्हलाया हुआ। गड्ढे में धँसी आँखें और उन पर पुती हुई स्याहियां। आते ही उन्होंने कहा मैं लौट आया, कंचन।' और इसके साथ ही वे मानो मेरे पैरों की ओर झुके।

" ऐसा पाप क्या चढ़ाते हैं मुझ पर ? कहते-कहते मैं रो पड़ी। उनके वक्ष से लग कर मैं उस दिन कितना रोयी—कह नहीं सकती।

"उन्होंने कहा, मैं क्षमा माँगने नहीं आया, क्षमा के योग्य नहीं हूँ। निरंतर भटकने पर यह समझ पाया हूँ कि मेरी शांति और मुक्ति तुम्हारे ही द्वारा होगी। अब मैं तुम्हें छोड़ कर कभी नहीं जाऊँगा। तुम पर मैंने सचमुच अत्याचार किया है। मैं तुम्हारे बिना रह नहीं पाऊँगा। खूब प्रयत्न करके देख लिया है। अब और सहा नहीं जाता। तुम एक बार अपने मुंह से कह दो कि तुमने मुझे क्षमा किया।'

'तब मेरी ऐसी इच्छा हो रही थी माधवी, कि उनके वक्ष में समा

जाऊँ। वह मेरे जीवन के परम सौभाग्यशाली क्षण थे ।"

तो आशुतोष फिर कब आये ?"

'उनके आगमन के कुछ ही देर बाद ! तब मैं कमल की बाहों में समायी थी। द्वार खोलकर मैंने उसका स्वागत किया और कमल का परिचय कराते हुए कहा इन से मिलो मेरे पति ।'

वह निमिष भर के लिए हतप्रभ हुआ, पर तुरंत सभल गया। उसका परिचय कराते हुए मैंने कमल से कहा, ये आशुतोष है। मेरे भाई के समान !

आशुतोष की आकृति पर अब कोई द्वन्द्व नहीं था, कोई कुंठा नहीं थी। वह मुझे प्रसन्न ही लगे। मुझे भी सन्तुष्टि हुई यह देख कर।

विदा लेते समय आशुतोष ने कहा 'आप दोनों मेरे गाँव में निमंत्रित हैं। कहिये किस दिन पधारियेगा ?'

मैंने कहा, 'अवसर आना होगा, लेकिन पहली बार आपके विवाह के मंगल अवसर पर !' "

और औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से कंचन की व्यथा-कथा का यही चरमोत्कर्ष है ! इतना कह कर उसने एक गहरी सांस ली और फिर पूछा अब तो तू सन्तुष्ट हुई होगी ? सब कुछ मैंने बता दिया है !'

' नहीं कंचन एक बात अभी तक नहीं बतायी।'

वह भला क्या ?'

यही कि, अब कमल उस क्षण की स्मृति से भीतर-ही भीतर टूटते तो नहीं ?'

"अच्छा प्रश्न किया है तुमने माधवी ! मेरा विचार है कि टूटते हैं। चाहो नहीं। यही स्वाभाविक है। लेकिन इसके साथ साथ यह भी सत्य है कि, ऐसे चिन्तन की व्यर्थता का भी उन्होंने आत्मसात कर लिया है। अपनी टूटन को अब वे मुझसे छिपाते भी नहीं, बल्कि जब-जब ऐसा होता है तब तब उन्हें और अधिक अपने निकट पाती हूँ। मेरे कारण उनमें भी विखराव पैदा होता है उस समटन का भी मुख्य उपादान मैं ही हूँ। और मुझे लगता है कि धीरे धीरे यह स्थिति भी निर्गलित हो जायेगी।'

इस प्रकार कुछ रोज मर यहाँ व्यतीत कर कंचन कमल के साथ लौट गयी। म और राजन दोना ही उन्ह छिन्न करने स्टेशन गय थ। कमल स बहुत सी बाते कहन का मरा मन था, पर विह्वलता क कारण कुछ कह न पायी। ट्रेन जब चली ता एक मात्र इतना कहा, कंचन मरी बहुत प्रिय सखी है। दखना, इसक मन का कभी कोई ठेस न पहुँच।'

उत्तर म कमल ने एक निश्छल मुसकराहट की भेंट मुझे द डाली।

स्टेशन से जब घर पहुँची तो मुझ पर जैसे एक उन्माद छाया था। कंचन की कथा का लिपिबद्ध करने का सकल्प अब चरम पर था। ठीक उसी दिन लेखन म जुट गयी।

अब आज लग रहा है कि कथा समाप्त हो गयी। वह अपने निर्दिष्ट तक पहुँच चुकी है। लिखने को अब कुछ भी शेष नही। फिर भी मन म एक शका अभी बाकी है। जीवन की विराटता का कथा के सक्षिप्त कलेवर म नही बाधा जा सकता क्योकि एक स्थल तक पहुँच कर कहानी को समाप्त होना ही होता है। लकिन जीवन तब भी चलता रहता ह। उस रुकने का अवकाश कहा? वह निरतर क्रम ठहरा। इसीलिए शका है।

एक प्रश्न रह रह कर अब भी मन म उठ रहा है कि क्या वे दोना आजीवन नितात सहज होकर ही अपनी समस्त गतिविधियो को सपन्न कर पायेंग? उस क्षण विशेष का दुर्बलता का प्रभाव उनके जीवन से क्या लुप्त हो जायगा ?

लकिन इन और एस समस्त प्रश्नो का उत्तर ता भविष्य के गभ में छिपा ह। भविष्य का कौन दख पाया है? सिफ कामना कर सकती हूँ कि मेरी वह सखी अब सदव सुखी रहे। सुना है कि मित्रा की शुभकामनाएँ बडी प्रभावशाली होती है।

□□

सुमित्रा चरतराम

•

मेरठ (उ० प्र०) में जन्मी सुमित्राजी देश के सुप्रसिद्ध इंजीनियर राजा ज्वालाप्रसाद की सुपुत्री हैं। आपने काशी विश्वविद्यालय से बी० ए० किया। इस दौरान हिंदी के प्रमुख साहित्यकारों के संपर्क में आने के सुयोग और उनसे प्राप्त प्रेरणा के फलस्वरूप सुमित्राजी में साहित्य और कला में विशेष अभिरुचि का विकास हुआ। इसके परिणामस्वरूप साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में आपका पहला उपन्यास 'प्रथम पुरुष' प्रकाश में आया जिसे पर्याप्त सराहना और ख्याति मिली। प्रस्तुत उपन्यास 'जीवन सरिता' आपका दूसरा उपन्यास है।

आपका विवाह देश के प्रसिद्ध उद्योगपति लाला श्रीराम के दूसरे सुपुत्र श्री चरतराम से सम्पन्न हुआ। गृहस्थी की व्यस्तताओं के बावजूद साहित्य और कला के क्षेत्र में आपकी गतिविधियाँ जारी रहीं। फलस्वरूप 1947 में 'झंकार' नाम की संस्था की नींव पड़ी और यही छोटी-सी संस्था आज एक विशाल सांस्कृतिक संस्था के रूप में श्रीराम भारतीय कला केन्द्र रूप में देश-विदेश के कला-क्षेत्रों में विख्यात है।